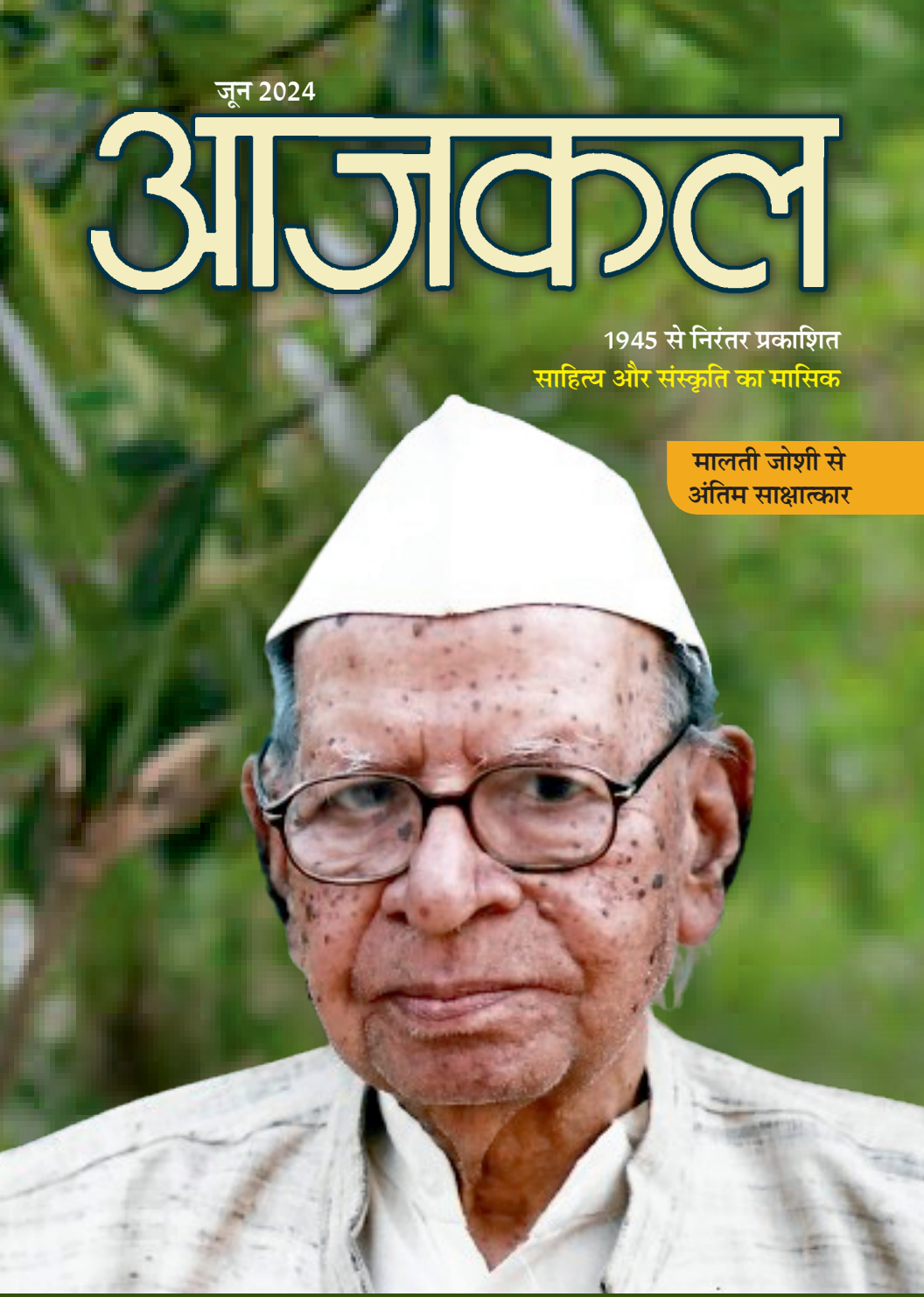
जून 2024

आजकल

1945 से निरंतर प्रकाशित
साहित्य और संस्कृति का मासिक

मालती जोशी से
अंतिम साक्षात्कार



‘आवारा मसीहा’ के 50 वर्ष

(विष्णु प्रभाकर जयंती पर विशेष आलेख)



योजना
विकास को समर्पित मासिक
(हिंदी, अँग्रेज़ी, उर्दू व 10 अन्य भारतीय भाषाओं में)

प्रकाशन विभाग
सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय
भारत सरकार

कुरुक्षेत्र
ग्रामीण विकास पर मासिक
(हिंदी और अँग्रेज़ी)

आजकल
साहित्य एवं संस्कृति का मासिक
(हिंदी तथा उर्दू)

बाल भारती
बच्चों की मासिक पत्रिका
(हिंदी)

घर पर हमारी पत्रिकाएँ मंगाना है काफी आसान...

आपको सिर्फ नीचे दिए गए 'भारत कोश' के लिंक पर जा कर पत्रिका के लिए ऑनलाइन डिजिटल भुगतान करना है-
https://bharatkosh.gov.in/Product/Product

सदस्यता दरें

प्लान	योजना या कुरुक्षेत्र या आजकल		बाल भारती	
वर्ष	साधारण डाक	ट्रैकिंग सुविधा के साथ	साधारण डाक	ट्रैकिंग सुविधा के साथ
1	₹ 230	₹ 434	₹ 160	₹ 364

ऑनलाइन के अलावा आप डाक द्वारा डिमांड ड्राफ्ट, भारतीय पोस्टल आर्डर या मनीआर्डर से भी प्लान के अनुसार निर्धारित राशि भेज सकते हैं। डिमांड ड्राफ्ट, भारतीय पोस्टल ऑडर या मनीआर्डर '**अपर महानिदेशक, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय**' के पक्ष में **नई दिल्ली** में देय होना चाहिए।

अपने डीडी, पोस्टल आर्डर या मनीआर्डर के साथ नीचे दिया गया 'सदस्यता कूपन' या उसकी फोटो कॉपी में सभी विवरण भरकर हमें भेजें। भेजने का पता है-
संपादक, पत्रिका एकांश, प्रकाशन विभाग, कक्ष सं. 779, सूचना भवन, सीजीओ कॉम्प्लेक्स, लोधी रोड, नई दिल्ली-110003

अधिक जानकारी के लिए ईमेल करें- pdjucir@gmail.com

हमसे संपर्क करें- **फोन : 011-24367453** (सोमवार से शुक्रवार सभी कार्य दिवस पर प्रात: साढ़े नौ बजे से शाम छह बजे तक)

कृपया नोट करें कि सदस्यता शुल्क प्राप्त होने के बाद सदस्यता शुरू होने में कम से कम आठ सप्ताह लगते हैं। कृपया इतने समय प्रतीक्षा करें और पत्रिका न मिलने की शिकायत इस अवधि के बाद करें।

सदस्यता कूपन (नई सदस्यता/नवीकरण/पते में परिवर्तन)

कृपया मुझे 1 वर्ष के प्लान के तहत ..... पत्रिका ..... भाषा में भेजें।

नाम (साफ व बड़े अक्षरों में) .....

पता : .....

..... ज़िला ..... पिन .....

ईमेल ..... मोबाइल नं. .....

डीडी/पीओ/एमओ सं. ..... दिनांक ..... सदस्यता सं. .....

स्थापित 1945

आजकल

जून, 2024
ज्येष्ठ-आषाढ़ 1946

❖ वर्ष : 80 ❖ अंक : 2 ❖ पृष्ठ : 108 ❖ पूर्णांक : 946

अनुक्रम

श्रद्धांजलि



8 नारी विमर्श की चितेरी कथाकार : *सुधा रानी तैलंग*
(कथाकार मालती जोशी से अंतिम साक्षात्कार)

12 जंगली हवाओं से जूझता कवि : *राजेन्द्र गौतम*
(नवगीतकार माहेश्वर तिवारी को शब्दांजलि)

विष्णु प्रभाकर पर विशेष

20 हिन्दी के अद्‌भुत साहित्य मनीषी : *प्रकाश मनु*

25 अजातशत्रु आपुन जन : *योगेन्द्र दत्त शर्मा*

32 कथा-सूत्र खोजने वाला शिल्पी : *शेरजंग गर्ग*

37 कविता : मौन ही मुखर है

साक्षात्कार

38 वक़्त के साथ कैमरे बदलते रहे हैं : *अशोक बैरागी*
(लेखक और छायाकार राजकिशन नैन से बातचीत)

कहानी

44 छुट्टी : *दीपक गिरकर*

48 हिचकी : *आनन्दप्रकाश त्रिपाठी*

कविताएँ/ग़ज़लें

47 गौरैया : *निवेदिता झा*

59 दुनिया भूल जाना चाहती हूँ : *कविता विकास*

वातायन

56 मेम्फ़िस स्टेशन पर : *जोहान्स विल्हेम जेन्सेन/*
अनुवाद : बंशीधर तातेड़

स्पर्धा आजकल

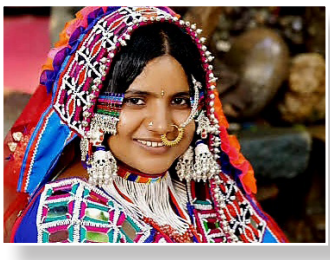
60 छायावाद का पुनर्मूल्यांकन : *रामदरश मिश्र*

बीता कल

67 नागार्जुन : जनगण-मन का जाग्रत शिल्पी
कुमार विमल

विविध रंग

75 बंजारों के सौन्दर्यबोध का मूर्तन करती कृतियाँ
शैलेन्द्रकुमार शर्मा



यायावर

83 गोवा में पाँच दिन : *राधेश्याम तिवारी*

पुस्तक आजकल

94 सच की तलाश करती ग़ज़लें : *मीना बुद्धिराजा*

96 पटना की सांस्कृतिक यात्रा का दस्तावेज़
दिनेश कुमार दास

98 'टेक्नो वर्ल्ड' में शाश्वत मूल्यों की कहानी
शहादत

100 कम्पनी काल में पटना शैली की चित्रकला
प्रियंका सिंह

101 पर्यावरण और विकास : *फ़रहत परवीन*

102 योग विज्ञान : स्वरूप, परम्परा एवं प्रयोग
अभिषेक चतुर्वेदी

103 पुस्तकें मिलीं

साहित्यिक गतिविधियाँ

104 रिपोर्ट : *आकाश मिश्रा/बीना गुप्ता*

प्रकाशन प्रायोजन

106 प्रकाशन विभाग की गतिविधियाँ

प्रसंगवश

'आजकल' के 1945 में प्रकाशित प्रथम अंक के लेखकों और साहित्यकारों में से एक विष्णु प्रभाकर की कालजयी और अनेक पुरस्कारों से सम्मानित रचना 'आवारा मसीहा' के पुस्तकाकार के रूप आने की इस वर्ष स्वर्ण जयंती मनाई जा रही है। सरल और साधारण जीवन किन्तु असाधारण व्यक्तित्व के स्वामी विष्णुजी की इसी माह जयंती भी है।

उत्तर प्रदेश के मुज़फ़्फ़रनगर ज़िले के मीरापुर क़स्बे में जन्मे विष्णु प्रभाकर की प्रारम्भिक शिक्षा तो हालाँकि मीरापुर में हुई लेकिन बाद में वे अपनी नानी के घर हरियाणा स्थित हिसार आ गए थे। प्रभाकर की घर की स्थिति ठीक-ठाक नहीं थी, इसलिए 1929 में हिसार में मैट्रिक करने के बाद ही उन्होंने नौकरी शुरू कर दी, लेकिन साथ ही पढ़ाई का साथ नहीं छोड़ा। उन्होंने पंजाब विश्वविद्यालय से अंग्रेज़ी में बीए और हिन्दी भूषण, प्राज्ञ, हिन्दी प्रभाकर किया। प्रभाकर स्वतन्त्रता आंदोलन में 1940 और 42 में गिरफ़्तार हुए और अंग्रेज़ी शासनादेश के कारण उन्हें पंजाब छोड़ना पड़ा। उन्हीं दिनों उन्होंने खादी पहनने का संकल्प लिया और जीवन पर्यंत इसका पालन किया। 1944 में वे दिल्ली आ गए। कुछ समय अखिल भारतीय आयुर्वेद महामंडल और बाद में आकाशवाणी में काम किया।

उन्होंने हिन्दी की प्रायः सभी विधाओं– कहानी, नाटक, उपन्यास, यात्रावृत्त, संस्मरण, निबन्ध, अनुवाद, बाल साहित्य आदि में प्रचुर लेखन किया। वह अपने प्रारम्भिक जीवन में रंगमंच से जुड़ गए थे लेकिन साहित्यकार के रूप में फिर भी स्वयं को कहानीकार ही मानते थे। उन्होंने अनेक पुस्तकों का सम्पादन भी किया।

'आवारा मसीहा' के लेखन में उन्होंने जीवन के 14 वर्ष लगाए। उन्होंने बांग्ला भाषा सीखकर बांग्ला कथा शिल्पी शरत चन्द्र के सैकड़ों समकालीन लोगों से बात की। बिहार, बंगाल और बर्मा (अब म्यांमार) का व्यापक भ्रमण किया। इस कालजयी रचना के रचनाकार के रूप में जिन कठिनाइयों का अनुभव उन्होंने किया, उनका विवरण और दूसरे रोचक वृत्तांत इस अंक में विष्णुजी पर विशेष आलेखों में हैं।

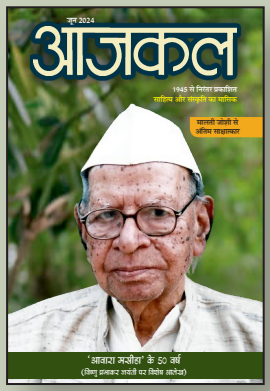
सन् 1931 में पहली कहानी 'हिन्दी मिलाप' में प्रकाशित होने से शुरू हुई क़लम के इस अथक साधक की साहित्यिक यात्रा में 'आवारा मसीहा', 'अर्द्धनारीश्वर', 'धरती अब भी घूम रही है' जैसे कई उपन्यास, 'हत्या के बाद', 'प्रकाश और परछाइयाँ', 'युगे-युगे क्रान्ति' जैसे नाटक व एकांकी, यात्रा वृत्तांत सहित अनेक उत्कृष्ट रचनाएँ हैं, जिनसे हिन्दी साहित्य समृद्ध हुआ।

एक बार आकाशवाणी के एक कार्यक्रम की रिकॉर्डिंग में प्रभाकरजी से विभिन्न साहित्यिक विधाओं पर व्यापक चर्चा हुई थी, इस बातचीत में उन्होंने कहा था कि किस तरह आकाशवाणी के नाटकों की रिकॉर्डिंग में कार्य की तन्मयता या तल्लीनता में एक सुबह से कब दूसरे दिन की सुबह हो जाती थी, पता ही नहीं चलता था। इस बातचीत की रिकॉर्डिंग के समय उनकी आयु 94 बरस के आस-पास थी, किन्तु एक हल्की-सी लाठी के सहारे छरहरी काया में वे काफ़ी चुस्त-दुरुस्त थे और उनके संस्मरणों से कब तीन स्पूल भर गए, पता ही नहीं चला।

समकालीन महिला कथाकारों में से एक सशक्त हस्ताक्षर और महिलाओं के सरोकारों को प्रभावी रूप से रेखांकित करने वाली मालती जोशी से साक्षात्कार भी आपके समक्ष प्रस्तुत किया जा रहा है। पत्रिका प्रिंट में जाते-जाते ही मालती जोशी जी के दुःखद निधन का समाचार मिला। यह उनका अंतिम साक्षात्कार साबित हुआ। मालती जोशी का निधन एक ऐसे युग का अवसान है जिसमें उनकी लोकप्रियता और सम्मान की भावना समूचे साहित्य प्रेमियों के दिलों में चरम सीमा पर रही है। तीन पीढ़ियाँ उनके साहित्य की प्रशंसक है। उनकी सहजता सरलता आत्मीयता सबके दिलों को छू लेती थी। उनको शत शत नमन!

1950 और 60 के दशक में 'कवि सम्मेलनों के स्वर्णिम काल' में महादेवी वर्मा, हरिवंश राय बच्चन, बाबा नागार्जुन, त्रिलोचन शास्त्री, केदारनाथ अग्रवाल, भवानीप्रसाद मिश्र, शिवमंगल सिंह सुमन, जैसे प्रतिष्ठित कवियों के साथ काव्यपाठ शुरू करने वाले तथा नवगीत के स्तम्भों में से एक रहे माहेश्वर तिवारी का इस वर्ष 16 अप्रैल को देहावसान हो गया। उनके व्यक्तित्व और कृतित्व पर श्रद्धांजलि आलेख भी इस अंक में है।

वैद्यनाथ मिश्र उर्फ़ जनकवि बाबा नागार्जुन की इस माह की अंतिम तिथि यानी 30 को जयंती है। उनकी जन्म शताब्दी पर कुमार विमल का 'आजकल' के जून 2011 अंक में आलेख प्रकाशित हुआ था। यह आलेख 'बीता कल' में पुनर्प्रस्तुत किया जा रहा है।



मुख्य सम्पादक : कुलश्रेष्ठ कमल

सम्पादक : फरहत परवीन

सम्पादकीय पत्र-व्यवहार

सम्पादक आजकल

प्रकाशन विभाग,

कमरा नं. 601डी, सूचना भवन,

सी.जी.ओ. कॉम्प्लेक्स, लोदी रोड, नई दिल्ली-110003

दूरभाष : 011-24362915

संयुक्त निदेशक (उत्पादन) : डी.के.सी. हृदयनाथ

आवरण सज्जा : बिन्दु वर्मा

आजकल वर्ष भर घर मँगाने के लिए स्कैन करें QR कोड

वार्षिक शुल्क ट्रैकिंग सुविधा के साथ ₹434 और सामान्य डाक से मात्र ₹230

आजकल की सदस्यता लेने, पुराने अंक मँगाने, पत्रिका न मिलने की शिकायत या फिर विज्ञापन के लिए सम्पर्क करें–

फोन - 011-24367453 (सोमवार से शुक्रवार प्रातः 9:30 से 6:00 बजे तक)

अथवा pdjucir@gmail.com पर ईमेल करें या लिखें-

अभिषेक चतुर्वेदी, सम्पादक (प्रसार),

पत्रिका एकांश, प्रकाशन विभाग, कमरा नं. 779,

सूचना भवन, सी.जी.ओ. कॉम्प्लेक्स,

लोदी रोड, नई दिल्ली-110003

प्रकाशन विभाग के विक्रय केन्द्रों की सूची पृष्ठ 58 पर

www.publicationsdivision.nic.in

www.facebook.com/publicationsdivision

@DPD_India @dpd_india

ajkalhindi@gmail.com

पत्र





आकर्षक व्यक्तित्व की सरलता

अप्रैल 2024 अंक मिला। हर बार की तरह इस बार भी 'प्रसंगवश' बहुत अच्छा लगा। तमाम महत्वपूर्ण जानकारियाँ मिलीं।

अप्रैल महीने में राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' की पुण्यतिथि (24 अप्रैल) होती है। दिनकरजी की पुण्य स्मृति में प्रभात कुमार राय का लेख 'आकर्षक व्यक्तित्व की सरलता और स्नेह वर्षा' दिनकर के व्यक्तित्व के विविध पक्षों पर प्रकाश डालता है। 'दिनकर' की कविताएँ राष्ट्रीयता की भावनाओं से ओत-प्रोत हैं। उत्तर छायावाद काल के कवियों में दिनकर का महत्वपूर्ण स्थान है। उनकी कविताओं में छायावाद की अति कल्पनाशीलता, सुकुमारिता और वायवीयता के विरुद्ध विद्रोह है। वास्तव में दिनकर ने कविता की भाषा, शैली और वस्तु तत्त्व में क्रान्ति की है।

अप्रैल महीने में ही महापंडित राहुल सांकृत्यायन की जयंती और पुण्य तिथि आती है। उनके बारे में 'आजकल' पत्रिका के अप्रैल 1993 अंक में प्रकाशित विष्णु प्रभाकर के लेख 'विराट व्यक्तित्व' को इस अंक में पुनः प्रकाशित कर सही मायने में राहुलजी को सच्ची श्रद्धांजलि दी गई है। राहुलजी महापंडित ही थे। उन्हें अनेक भाषाओं का ज्ञान तो था ही, उनकी लगभग सवा सौ कृतियों में विविध विषयों का समावेश है।

अंक की सभी कविताएँ और कहानियाँ अच्छी लगीं। 'वातायन' के अंतर्गत अमरीकी कवयित्री लुइज़ ग्लूक की कविताएँ (अनुवादक : बालकृष्ण काबरा 'एतेश') मन को बहुत भाईं। 'साहित्यिक गतिविधियाँ' द्वारा विभिन्न सांस्कृतिक एवं साहित्यिक कार्यक्रमों की जानकारी मिलती है। पूरा अंक ही उत्कृष्ट एवं संग्रहणीय है।

-रमेश चन्द्र शुक्ल, ज़िला-उन्नाव (उत्तर प्रदेश)

जीवन मूल्यों का स्थापना-क्रम

अप्रैल 2024 अंक मिला। 'प्रसंगवश' में साहित्य अकादमी के साहित्योत्सव की चर्चा पढ़कर अच्छा लगा। साहित्य, कला, संस्कृति को केन्द्र में रखकर ऐसे कार्यक्रमों का आयोजन बहुत महत्वपूर्ण होता है। इस अंक में राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' की पुण्यतिथि पर प्रभात कुमार राय का स्मरण लेख 'दिनकर' के जीवन व व्यक्तित्व पर विविध कोणों से प्रकाश डालता है। 'दिनकर' के शानदार और प्रेरक व्यक्तित्व से लेखक बहुत प्रभावित दिखता है। रेडियोकर्मी अमीन सायानी का रेडियो प्रसारण जिसने भी सुना होगा वह उनकी आवाज़ को कभी भूल नहीं सकता। अपने 'श्रद्धांजलि' लेख में प्रदीप सरदाना ने उन्हें बड़ी शिद्दत से याद किया है। छायावादी कविता ने नवजीवन का आलोक पाकर नए जीवन मूल्यों की स्थापाना किस प्रकार की, इसे रामदरश मिश्र के लेख में पढ़ा जा सकता है। योगेन्द्र दत्त शर्मा जब 'आजकल' में सम्पादक थे तब से उनसे परिचित हूँ। कई बार मिलना भी हुआ है। पत्रिका में उन पर जगदीश पंकज का साक्षात्कार बड़ा उपयोगी और सारगर्भित है। गीत, नवगीत पर शर्माजी के विचार महत्वपूर्ण हैं। विराट व्यक्तित्व राहुल सांकृत्यायन पर विष्णु प्रभाकर का लेख विशेष

पठनीय है। कहानी 'अवसाद' अच्छी लगी। अन्य लेख, ग़ज़ल, कविताएँ उत्कृष्ट व पठनीय हैं।

-आनन्द स्वरूप श्रीवास्तव, जवाहर विहार, रायबरेली (उत्तर प्रदेश)

विविध विषयों पर सामग्री

मई 2024 अंक मिला। इस रूप में पहली बार देखा। इस सुन्दर अंक में साहित्य, कला, संगीत के अलावा विविध विषयों पर रुचिकर सामग्री पढ़ने को मिली। रामदरश मिश्र का लेख अच्छा लगा। रामदरश मिश्र ने 'छायावाद का पुनर्मूल्यांकन' लेख में सौन्दर्य के परिप्रेक्ष्य में उत्कृष्ट मूल्यांकन किया है। विशेष कर छायावादी कवियों की सौन्दर्य-दृष्टि को मानवीय चेतना के धरातल पर विकसित होते दिखाया है। छायावाद की काव्य-दृष्टि को लेकर विद्वानों में मतभेद ज़्यादा है। इसे अतीन्द्रिय अवस्था तक ले जाने का प्रयास विद्वान करते हैं लेकिन जब चेतना का विकास ऐतिहासिक रूप में देखते हैं तो सौन्दर्य इंद्रियों से निरपेक्ष नहीं कहा जा सकता है। यथार्थ का एक सापेक्ष दृष्टि है और इसकी अनुभूति मनुष्य को होती है। देश, काल एवं परिस्थितियों के कारण सौन्दर्य मानवता दृष्टि में परिवर्तन होता रहा है। सहज, सरल एवं संवेदनशील काव्य-दृष्टि मनुष्य को प्रिय है। मानवता को गुप्त और रहस्यमय पसन्द नहीं। आधुनिक ज्ञान-विज्ञान के युग में आवश्यकता भी नहीं है।

प्रसाद ने सौन्दर्य को 'उज्ज्वल चेतना का वरदान' कहकर सारे संशय पर से मानो पर्दा हटा दिया है। रामदरश मिश्र ने सौन्दर्य बोध के सम्बन्ध में आने वाले आक्षेपों को ध्यान में रख सवाल भी उठाया है जिससे संशय नहीं रहता है। इस पूनर्मूल्यांकन से छायावाद काव्य सौन्दर्य के परिदृश्य को समझने में मदद मिली।

पूजा यादव का लेख 'मीठी नीम' और 'कठगुलाब' के माध्यम से स्त्री विमर्श एवं स्त्री स्वतन्त्रता को पारिस्थितिकी की रौशनी में समस्याओं की ओर ध्यान आकर्षित किया है। विकासवाद और पूँजीवाद के परिप्रेक्ष्य में स्त्री स्वतन्त्रता, पितृसत्तात्मक बनाम पुरुष सत्तात्मक समाज, बाज़ारवाद एवं व्यवहार आदि स्त्री के अधिकार पर तर्कसंगत विचार रखे हैं। इन दोनों उपन्यासों में पारिस्थितिकी में नारी की भूमिका की गई है। लेख में नई शोध दृष्टि उभरी है। कविताएँ भी महत्वपूर्ण लगीं।

-गणेश चन्द्र राही, हज़ारीबाग़ (झारखण्ड)

प्रभावपूर्ण सरल पंक्तियाँ

अप्रैल 2024 अंक में छपा संस्मरणात्मक आलेख (प्रभात कुमार रॉय द्वारा लिखित) पढ़ने का मौक़ा मिला। प्रभावपूर्ण सरल पंक्तियाँ, जो एक क़िस्म की पारदर्शिता समेटे हुए हैं! बड़े ही आदरपूर्वक राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' को याद किया गया है, उनकी पंक्तियों को उद्धृत किया गया है, साथ ही बरसों पहले हुए साहित्यिक समारोह की अद्‌भुत झलक दिखा दी गई है, जिसमें शुद्ध साहित्यिक गरिमापूर्ण आचार-विचार स्थित है। अन्य प्रभावोत्पक विवरणों के साथ एक प्रसंग वर्णित है, जिसमें 'तुलसीदास' के शब्दों को पूरा सम्मान देते हुए दिनकरजी के द्वारा अपनी भावना प्रकट करने की आत्मीयता लिपटी सरलता स्थित है।

लेखक ने समारोह में महाकवि 'दिनकर' से हुए जिस मुलाक़ात को रेखांकित किया है, अपने मनोभावों और प्रिय कवि से हुए उज्ज्वल वार्तालाप को बिना लाग-लपेट के बताया है, वह निश्चय ही क़ाबिले तारीफ़ है।

पूरा अंक अपने-आप में प्रभावशाली है। अनुवादित कविताएँ और रामदरश मिश्र को पढ़ना सुखकारी रहा। पत्रिका के पन्नों पर छाई विविधता ने विशेष रूप से प्रभावित किया।

-इला कुमार

ई-मेल : ilakumar2002@yahoo.co.in



मालती जोशी जी का अंतिम साक्षात्कार

नारी विमर्श की चितेरी कथाकार

मालती जोशी देश की सर्वाधिक चर्चित समकालीन हिन्दी महिला कथाकारों में से थीं। मध्य प्रदेश सरकार का शिखर सम्मान, भवभूति अलंकरण, ओजस्विनी सम्मान, दुष्यन्त कुमार सम्मान, वनमाली सम्मान, राष्ट्रीय मैथिलीशरण गुप्त सम्मान, दिनकर संस्कृति सम्मान के अलावा साहित्य एवं शिक्षा के क्षेत्र में योगदान के लिए वर्ष 2018 में पद्मश्री सम्मान से सम्मानित किया गया था।

"आज के युवा लेखक अच्छा लिख रहे हैं। उनके पास संसाधनों की कमी नहीं है। सोशल मीडिया, इंटरनेट के आ जाने से उनके लेखन को गति मिली है। मेरा आज की युवा पीढ़ी से यही कहना है कि वो अपने काम में ईमानदारी बरतें और जल्दी से प्रसिद्धि पाने की लालसा में शॉर्ट कट न अपनाएँ।"



सुधा रानी तैलंग
ई-मेल : sudhatailang76@gmail.com

*कथाकार **मालती जोशी** की छह दशकों की समग्र साहित्यिक सृजन यात्रा के तमाम पहलुओं पर प्रस्तुत है **सुधा रानी तैलंग** से हुई बातचीत के प्रमुख अंश।*

प्रश्न : आपने मराठी भाषी होते हुए भी हिन्दी को ही लेखनी का माध्यम क्यों बनाया?

उत्तर : हिन्दी आम जन की भाषा है। हिन्दी भाषा व देवनागरी लिपि में बेहद मिठास, सरलता और आत्मीयता है। इसीलिए दूसरी भाषा बोलने वाले लोग भी हिन्दी को जल्दी अपना लेते हैं, ऐसे में हिन्दी में ही अधिक पाठक वर्ग हैं। यही कारण है कि मैंने हिन्दी को अपने लेखनी का माध्यम बनाया।

आपके पसंदीदा साहित्यकार जिनसे आप प्रभावित रही हैं?

शरत चन्द्र, आशापूर्णा देवी, कृश्न चन्दर, शरद जोशी, अमृत लाल नागर, शिवानी, कृष्णा सोबती, मन्नू भण्डारी और सूर्य बाला मेरे पसंदीदा लेखक हैं जिनके लेखन से मैं प्रभावित रही हूँ।

आपने लगभग सभी विधाओं में लिखा है पर कहानी को ही क्यों चुना?

कहानी एक ऐसी सशक्त विधा है कि उसमें जीवन की तमाम अनुभूतियों, अंतर्मन की संवेदनाओं को सहज सरल तरीक़े से अभिव्यक्त किया जा सकता है। आज

लोगों के पास ज़्यादा समय नहीं है। कहानी छोटी होती है इसलिए उसके पाठक अधिक होते हैं। कहानी हमारे ज़ेहन में ज़्यादा समय तक ज़िन्दा रहती है।

आपकी पहली प्रकाशित कृति कौन-सी है?

मेरा पहला कहानी-संग्रह 'पाषाण युग' 1977 में प्रकाशित हुआ।

आपकी ज़्यादातर कहानियाँ पारिवारिक रिश्तों पर ही आधारित रहती हैं, ऐसा क्यों?

मेरी रचनाओं का केन्द्र बिन्दु घर, परिवार और रिश्ते-नाते हैं। मैंने अपने जीवन में संयुक्त परिवारों के खट्टे-मीठे प्रसंग, परिवार की तरह पास-पड़ौस का माहौल देखा है। मेरा मानना है कि पारिवारिक मूल्यों और सामाजिक ताना-बाना पर आधारित कहानियाँ घरेलू होने के कारण पाठकों को अपनी-सी लगती हैं।



मालती जोशी
(4 जून, 1934 - 15 मई, 2024)

आपकी कहानियों में विविधता है। आप कहानियों के सूत्र कहाँ से तलाशती हैं?

मेरे संवेदनशील, अवचेतन मन से आते हैं कहानी के सूत्र। मैं हमेशा अपने जीवन के अनुभवों से, अपने इर्द-गिर्द से ही कहानी के पात्रों को तलाशती हूँ जो पाठकों को अपने से लगें।

आपकी सृजन प्रक्रिया?

मैं कहानी ये सोचकर लिखती हूँ कि वो उबाऊ न हो, भाषा सरल व प्रवाहमय हो ताकि पाठकों के मन में सीधे उतर जाए। जब कोई घटना, प्रसंग मन में उमड़ती-घुमड़ती हुई कहानी का आकार ले लेती है तो वो धीरे-धीरे एक-दो महीने में पूरी तैयार हो जाती है। उसके बाद ही मैं लिखती हूँ। मैं आज भी काग़ज़ पर लिखती हूँ। ग़लती होने पर मैं नए सिरे से दोबारा लिखती हूँ।

ज़्यादातर महिला कथाकारों की रचनाओं में पुरुष पात्रों की उपस्थिति कम ही देखी जाती है?

मैंने अपनी रचनाओं में पुरुष पात्रों को भी सहजता से शामिल किया है, 'पिया पीर न जानें', कहानी एक संपन्न परिवार में अकर्मण्य पुरुष की दायित्व हीनता से उपजी परिस्थितियों पर केन्द्रित है। 'नो सिम्पेथी प्लीज़' कहानी में भी पुरुष के मन की पीड़ा, अंतर्द्वन्द्व को बख़ूबी दर्शाया गया है।

एक लेखक की रचनाओं का मूल्यांकन कैसे होता है?

किसी भी लेखक की रचनाओं का मूल्यांकन समीक्षक नहीं बल्कि उसके पाठक ही करते हैं। मैंने अपनी कोई भी किताब समीक्षा के लिए कहीं नहीं भेजी। इसके बावजूद पाठकों की कमी कभी भी नहीं रही। लेखक का सरोकार सिर्फ़ पाठकों से होता है। लेखक को पाठकों तक पहुँचाना आना चाहिए। क्लिष्ट व गूढ़ लिखो तो पाठक नहीं मिलते।

पाठक और लेखक के बीच का रिश्ता क्या है?

लेखक का पाठक के संग बेहद ईमानदारी व आत्मीयता का रिश्ता होता है।

पहले पाठकों के पत्र और अब फ़ोन पर हुई बातचीत व सोशल मीडिया पर पाठकों की प्रतिक्रिया ही मेरे लेखन में प्राणवायु का काम करती है। पाठकों का स्नेह ही मेरे लिए सबसे बड़ा पुरस्कार, सम्मान है।

लेखन की सार्थकता आप किसे मानती हैं?

जब लेखन किसी के मन के भीतर गहराइयों तक उतर जाता है तो लेखन सार्थक हो जाता है।

साहित्यकार की मनोभूमि कैसी होनी चाहिए?

साहित्य सृजन एक सांस्कृतिक कर्म है। लोक रंजन से ज़्यादा लोक आराधना का भाव अधिक होना चाहिए। श्रेष्ठ व कालजयी साहित्य वही होता है जो अपने स्व से जुड़कर लिखा जाता है।

आपने अपनी रचनाधर्मिता में एक नया आयाम जोड़ा है 'कथा-कथन' का। इस परम्परा को शुरू करने का श्रेय आपको ही जाता है।

कथा-कथन मराठी की एक पुरातन विधा है। कहानी को मौखिक प्रस्तुत करने की। कोरोना काल में लॉकडाउन के दौर में इस कथा-कथन को एक नया मंच मिला अपने पाठकों से रूबरू होने का। मेरी कहानियाँ लोग यूट्यूब पर सुनते हैं पर आज के पाठक मुझसे माँग करते हैं कि मैं स्वयं कहानी की प्रस्तुति करूँ। मुँह से सुनाने में फ़ीलिंग अच्छी आती है। मैं एक ही टेक में अपनी पूरी कहानी को सुना देती हूँ। ऐसे में कई बार जब मैं सोशल मीडिया पर या किसी कार्यक्रम में कहानियाँ सुनाती हूँ तो अक्सर लोगों को लगता है कि मैं कहानी की किताब के पृष्ठों को पढ़ रही हूँ। मुझे अपनी सभी कहानियाँ अक्षरशः ज़ुबानी याद है।



मालती जोशी पत्रिका के पठन-पाठन में

आज के दौर में साहित्य पर क्या सोशल मीडिया का बढ़ता प्रभाव है?

समय के अनुसार लेखक को भी बदलना पड़ता है। हर पीढ़ी के साथ माध्यम तो बदलता है। आज इंटरनेट के दौर में फ़ेसबुक, वाट्सअप, ट्विटर, ब्लॉग्स भी साहित्यकारों का पाठक मंच से जुड़ने का एक सशक्त माध्यम हैं। सूचना प्रौद्योगिकी ने इस सम्प्रेषण को नई गति दी है। कोरोना काल में अपार साहित्य रचा गया और सोशल मीडिया ने साहित्य प्रेमियों को एक-दूजे से जोड़कर लेखन को एक विस्तृत पटल दिया।

वरिष्ठ कथाकार गीताजंलि श्री के उपन्यास 'रेत समाधि' को 2022 में अंतरराष्ट्रीय बुकर पुरस्कार मिलने के बाद हिन्दी के साहित्य का भविष्य आप कैसा देखती हैं?

भारतीय लेखिका को पहली बार सम्मान मिलने के बाद हिन्दी साहित्य की लोकप्रियता बढ़ी है। हिन्दी व भारतीय भाषाओं के लिए यह सचमुच गौरव की बात है। ये हिन्दी का सम्मान है। गीताजंलि श्री के हिन्दी उपन्यास 'रेत समाधि' को इंटरनेशनल बुकर पुरस्कार 2022 मिलने से ये सम्भावना जतलाई जा



तत्कालीन राष्ट्रपति श्री रामनाथ कोविन्द से पद्मश्री पुरस्कार प्राप्त करते हुए मालती जोशी

सकती है कि अब निश्चित ही हिन्दी के रचना-संसार की दशा व दिशा में सुधार आएगा और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर हिन्दी की अनुदित रचनाएँ सम्मान की हक़दार बनेंगी। हिन्दी का भविष्य निश्चित ही उज्ज्वल है।

आज के युवा साहित्यकारों के बारे में आप क्या कहना चाहेंगी?

आज के युवा लेखक अच्छा लिख रहे हैं। उनके पास संसाधनों की कमी नहीं है। सोशल मीडिया, इंटरनेट के आ जाने से उनके लेखन को गति मिली है। मेरा आज की युवा पीढ़ी से यही कहना है कि वो अपने काम में ईमानदारी बरतें और जल्दी से प्रसिद्धि पाने की लालसा में शॉर्ट कट न अपनाएँ।

89 वर्ष की उम्र के इस पड़ाव में भी आपकी साहित्य सृजन की यात्रा अनवरत आज भी जारी है। कहाँ से आती है इतनी उर्जा और प्रेरणा शक्ति?

लिखना मेरी आदत है, पैशन है, लिखने से मुझे आत्मिक संतुष्टि मिलती है। मैंने हमेशा स्वेच्छा से लिखा, कभी ज़बरदस्ती नहीं लिखा। लेखक को स्वान्तःसुखाय ही लिखना चाहिए पर अब स्वास्थ्य के कारण उतना नहीं लिख पाती।

लेखन के अलावा आपकी रुचियाँ?

संगीत सुनना अच्छा लगता है। ख़ाली समय में कुमार गंधर्व के निर्गुण पद, भजन सुनती हूँ।

पाठकों के लिए आपकी नई रचनाएँ?

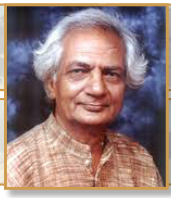
कुछ समय पहले 'कौन ठगवा नगरिया लूटल हो' और 'ये तो होना ही था' कहानी-संग्रह प्रकाशित हुए हैं।

आपके प्रशंसक, पाठकों को प्रतीक्षा है आपकी आत्मकथा की। कभी आत्मकथा लिखने का मन हुआ?

मेरी आत्मकथा कौन पढ़ेगा? मैंने तो कभी सोचा नहीं इस बारे में। हाँ, पर मेरे संस्मरणों को ही आप पढ़ें तो उसमें मेरे जीवन के पूरे यादगार अनुभव शामिल हैं।

आपकी कहानियों में छिपा हुआ संदेश पाठकों के लिए?

आज परिवार बिखर रहे हैं। आज के परिवार पति, पत्नी व बच्चों तक ही सीमित हो गए हैं। युवा पीढ़ी व बुज़ुर्गों में अंतर बढ़ता जा रहा है। आपसी संवाद ख़त्म होते जा रहे हैं। ऐसे में परिवार में आपसी सामंजस्य, रिश्तों में अपनापन कैसे आ सकता हैं। यही संदेश कहानियों के पात्रों के ज़रिए मैं पाठकों तक पहुँचाना चाहती हूँ। ❑



माहेश्वर तिवारी

जंगली हवाओं से जूझता कवि

आरम्भ से ही माहेश्वर तिवारी के गीतों की ज़मीन बहुत विशिष्ट रही है। कृत्रिमताओं और बड़बोलेपन से दूर वे जीवन के ऐसे सहज चित्र प्रस्तुत करते रहे थे, जिनमें पाठक के साथ चलने की, उसकी सम्वेदना का हिस्सा बनने की अद्भुत क्षमता थी। यह शक्ति उसकी काव्य-भाषा की बिम्बात्मकता में निहित है। वे इसे नवगीत की काव्य-भाषा की विशिष्टता मानते हैं।

16 अप्रैल 2024 को 'उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान' के सर्वोच्च सम्मान 'यशभारती' से सम्मानित माहेश्वर तिवारी का निधन हिन्दी साहित्य की बहुत बड़ी क्षति है। उनका जाना हिन्दी कविता की नवगीत-धारा के लिए विशेष रूप से आघातक रहा क्योंकि उनकी काव्य-यात्रा नवगीत की काव्य-यात्रा के लगभग समानान्तर रही और इस दिशा में उनका प्रदेय ऐतिहासिक है। साहित्यिक प्रदेय विशिष्ट और विपुल है। साहित्यिक श्रेष्ठता और लोकप्रियता एक साथ कम ही कवियों को प्राप्त हुई है। माहेश्वरजी की रचनाओं के प्रकाशन का सिलसिला तो पैंसठ वर्षों तक निरन्तर चला ही, इतने ही समय तक काव्य-मंचों पर उनके कोकिल कण्ठ से गूँजने वाली पंक्तियाँ भी जन-जन के हृदय में समाई रहीं। छठे दशक से ही 'धर्मयुग', 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' जैसी प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में उनकी रचनाओं का प्रकाशन आरम्भ हो गया था और तभी से उन्होंने हिन्दी कवि-सम्मेलनों के छठे-सातवें दशक के स्वर्णिम दौर में महादेवी, बच्चन, नागार्जुन, त्रिलोचन, केदारनाथ अग्रवाल, भवानीप्रसाद मिश्र, शिवमंगल सिंह सुमन, बलबीर सिंह रंग, शम्भुनाथ सिंह तथा वीरेन्द्र मिश्र जैसे कवियों के साथ काव्यपाठ शुरू कर दिया था। नवगीत की स्थापना में उनके समवेत



राजेन्द्र गौतम
ई-मेल : rajendragautam99@yahoo.com



माहेश्वर तिवारी

संकलनों का महत्वपूर्ण स्थान है। माहेश्वर तिवारी की उपस्थिति 'पाँच जोड़ बाँसुरी', 'नवगीत दशक-दो', 'यात्रा में साथ-साथ', 'गीतायन', 'श्रेष्ठ हिन्दी गीत-संचयन', 'समकालीन नवगीत संचयन' जैसे सभी प्रतिनिधि समवेत संकलनों में देखी जा सकती है। 'हरसिंगार कोई तो हो', 'सच की कोई शर्त नहीं', 'नदी का अकेलापन' और 'फूल आए हैं कनेरों में' जैसे उनके नवगीत-संग्रहों का समकालीन कविता के इतिहास में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है।

माहेश्वर तिवारी का जन्म 22 जुलाई, 1939 को बस्ती, कबीर नगर (उत्तर प्रदेश) में हुआ था। परिवेश साहित्य का प्रेरक होता अवश्य है लेकिन कभी-कभी उसकी प्रतिक्रिया में भी साहित्यिक विकास हुआ करता है। उनका आत्मकथ्य है कि उनका जन्म एक ऐसे सामन्ती मानसिकता वाले परिवार में हुआ जहाँ कविता के नाम पर उत्तर-मध्यकालीन कविता के प्रति लगाव तो था, लेकिन सिर्फ़ दरबार लगाकर सुनने का, लेखन की कोई विरासत उसमें नहीं मिली। इस परिवेश से उनके मन-विहग को मुक्त आकाश गोरखपुर की ज़मीन पर कॉलेज में प्रवेश के साथ मिला। उन्होंने लिखा है, "एक बार पढ़ाई के बहाने ही घर छूटा जो सामन्ती मानसिकता से भी अलग होता गया। मैंने सामन्ती व्यवस्था में होते अतिचार और अमानवीयता को अपनी आँखों से देखा था। मेरे मन में उसके प्रति घृणा और असहमति, आक्रोश नहीं कहूँगा, पनपती गई। आगे की जीवन-गाथा वीरेन्द्र मिश्र की इस गीत-पंक्ति में ढलती है-

'जब-जब कण्ठावरोध होता है,
और अधिक स्वजनबोध होता है'।

कॉलेज में उनके साहित्य-प्रेम

को बढ़ावा मिला परमानन्द श्रीवास्तव, रामसेवक श्रीवास्तव, भगवान सिंह, देवेन्द्र कुमार और ब्रजराज तिवारी 'अधीर' जैसे उनके सीनियर साथियों से। यों इससे पहले कविता के संस्कार उन्हें पिंगल शास्त्र की शिक्षा देने वाले 'सनेही स्कूल' के प्रसिद्ध कवि रामदेव सिंह कलाधर से मिल चुके थे। उन्हें वे अपना काव्य-गुरु मानते थे। संगीत का अनुराग उनके मन में छोटे काका स्व. साकेत बिहारी तिवारी के कारण जागा, जिन्हें कबीर, विद्यापति और जयदेव की कुछ रचनाएँ कण्ठस्थ थीं और जब वे अपना हारमोनियम लेकर बैठते तो बालक माहेश्वर को अपने पास बिठाकर उनमें से कुछ का गायन करते। काका का संगीत प्रेम और पक्षी-प्रेम धीरे-धीरे उनकी सम्वेदना में घुलता रहा।

गोरखपुर पहुँचने के बाद कवि जब 'गीत-लेखन के जनपद में प्रविष्ट' होता है तब 'नए गीत' की चर्चा तो थी, लेकिन 'नवगीत' नाम नहीं आया था। उस समय हिन्दी कविता में अनेक नए आंदोलनों की धूम मची थी। माहेश्वर तिवारी की काव्ययात्रा का आरंभिक काल यही संकुल परिवेश का काल है। तब 'किसिम किसिम की कविता' का दौर था। एक ओर 'नई कविता' अपने पैर जमा चुकी थी दूसरी ओर गीत का विरोध शुरू हो चुका था। तब गीत का कायाकल्प करना एक युगीन आवश्यकता थी। अति रोमांसवादी गीत जन-जीवन से कट चुका था जबकि उसी समय 'निराला' अपने ढंग से गीत को नई-नई छवियों से समृद्ध कर रहे थे। उनके माध्यम से एक नई जन-चेतना गीत के साथ जुड़ रही थी। नवगीत इसी कायाकल्प का परिणाम था। नवगीत की प्रासंगिकता को नकारते हुए इसके विरोधियों ने तब एक भ्रामक तस्वीर गढ़ने की कोशिश की थी, लेकिन इस भ्रम को तोड़ते हुए माहेश्वर तिवारी ने स्पष्ट कहा, "नवगीत नई कविता से मुक़ाबले के लिए ओढ़ा गया कोई आवरण नहीं है। कविता के इतिहास में यथार्थ के दबाव से इसका जन्म हुआ। तब स्वच्छन्दतावादी धारा में लिजलिजी भावुकता या देहवादी आकुलता से सराबोर रोमानी गीत लिखे जा रहे थे जो गाने के लिए तो ठीक कहे जा सकते हैं, जीने के लिए नहीं। जब पूर्ववर्ती परम्परावादी गीत जीवन-यथार्थ, ऐसा यथार्थ जो बेडरूम के यथार्थ से अलग, त्रिलोचन शास्त्री के शब्दों में, 'मुझे जगत जीवन का प्रेमी/बना रहा है प्यार तुम्हारा' वाला यथार्थ था, से अपना मुँह मोड़कर खड़ा था। 'नई कविता' के लोग जिस गीत को केन्द्र में रखकर गीत-कविता को धकियाते और गरियाते रहे, वह नई कविता को ललकारने की ही स्थिति में कहाँ था।"

आरम्भ से ही माहेश्वर के गीतों की ज़मीन बहुत विशिष्ट रही है। कृत्रिमताओं और बड़बोलेपन से दूर वे जीवन के ऐसे सहज चित्र प्रस्तुत करते रहे थे, जिनमें पाठक के साथ चलने की, उसकी सम्वेदना का हिस्सा बनने की अद्‌भुत क्षमता थी। यह शक्ति उसकी काव्य-भाषा की बिम्बात्मकता में निहित है। वे इसे नवगीत की काव्य-भाषा की विशिष्टता मानते हुए कहते हैं, "नवगीत

एक बिम्बप्रधान काव्य-रूप है। उसमें सहजता तो अभिप्रेय है लेकिन सपाटबयानी नहीं। सपाट सिर्फ़ गद्य हो सकता है कविता नहीं।... कविता ...जितना व्यक्त करती है उतना ही अनकहा भी छोड़ देती है। दरअसल यह अनकहा ही तो कविता है"। आरम्भ से माहेश्वरजी के समक्ष कविता की अवधारणा बहुत स्पष्ट थी। वे 'हिन्दी समीक्षा की वाद-विवादग्रस्त अराजक तानाशाही के बावजूद गीत-कविता के अपनी ज़मीन पर वापस लौटने' को अनुभव कर रहे थे। उनका दृढ़ मत था, "कविता विचारहीन हो और वह मात्र वाग्विलास की वस्तु बनकर रह जाए, यह कोई भी सजग सम्वेदनशील मन नहीं चाहेगा, लेकिन वह भीतर और बाहर के सौन्दर्य की अनदेखी करे, यह भी उचित नहीं होगा"। उनके समग्र काव्य में विचार और संवेदना-आश्रित सौन्दर्य का संश्लेषण प्राप्त होता है।

माहेश्वर तिवारी का काव्य जीवन की सहजता से जुड़ा है। अति साधारण दृश्यों और घटनाओं से असाधारण संवेदना को व्यंजित करने वाले गीत उनकी मौलिकता का आधार हैं। आश्वस्ति के स्पर्श में और रीढ़ को सिहराने वाले भय में क्या रिश्ता है, इसे परिवेश की हल्की रेखाओं से उभरने वाले बिम्बों से वे यों चित्रित करते हैं-

'उँगलियों से कभी/हल्का-सा छुएँ भी तो
झील का ठहरा हुआ जल/काँप जाता है
मछलियाँ बेचैन हो उठतीं/देखते ही हाथ की परछाइयाँ
एक कंकड़ फेंक कर देखो/काँप उठती हैं सभी गहराइयाँ
और उस पल झुका कन्धों पर
क्षितिज की हर लहर के साथ/बादल काँप जाता है।'

हम जिस कठोर समय में जी रहे हैं, उसमें व्यवस्था के दानवी शिकंजे हमें कसे हुए हैं। इस भयावह वातावरण में कविता का काम सबसे जटिल और कठिन है। माहेश्वर तिवारी इस चुनौती को स्वीकार करते हैं और बहुत धारदार शैली में वक़्त के वहशी चेहरे को बेनक़ाब कर ख़ौफ़ के इस मंज़र की मुकम्मल तस्वीर पाठक के सामने रखते हैं। विशेष यह है कि यह न तो नारेबाज़ी है और न नक्काशी। कविता की अनिवार्य उपस्थिति का नाम ही माहेश्वर तिवारी है। झुलसते हुए बारूदी सुरंगों के सफ़र को तय किया जाने का गत्यात्मक बिम्ब में ढला यह बयान बहुत मर्मस्पर्शी है-

'हम पसरती आग में/जलते शहर हैं
...हम झुलसते हुए/बारूदी सुरंगों के/सफ़र हैं
कल उगेंगे/फूल बनकर हम/ज़मीनों में
सोच को/तब्दील करते/फिर यक़ीनों में
आज तो/ज्वालामुखी पर/थरथराते हुए घर हैं।'

नवगीत की रचना-प्रक्रिया में बिम्बात्मकता के अतिरिक्त भाषा का रूपकात्मक और प्रतीकगर्भित प्रयोग इसकी नई शैली का निर्माण करता है। जहाँ ये प्रयोग सहज एवं संवेदनाश्रित हैं, वहाँ वे इसकी उपलब्धि बने हैं, जहाँ उन्हें चमत्कार का जामा पहनाया गया है, वहाँ वे खिलवाड़

लगते हैं। माहेश्वर तिवारी के काव्य में प्रकृतिधर्मी प्रतीकों का अद्‌भुत प्रयोग नवगीत ही नहीं, समूची हिन्दी कविता में एक विशिष्ट स्थान रखता है। जिजीविषा और संघर्ष को प्रकृतिधर्मी प्रतीकों से माहेश्वर तिवारी ने ऐसे अद्‌भुत गीतों की रचना की है-

'कुहरे में सोए हैं पेड़
पत्ता-पत्ता नम है/यह सबूत क्या कम है
लगता है/लिपट कर टहनियों से/बहुत बहुत/रोए हैं पेड़
जंगल का घर छूटा/कुछ कुछ भीतर टूटा
शहरों में/बेघर होकर जीते/सपनों में खोए, हैं पेड़।'

माहेश्वर तिवारी ने रूमान को अभिव्यक्त करते 'याद तुम्हारी जैसे कोई/कंचन-कलश भरे' जैसे कालजयी गीतों की भी रचना की है। असल में 'घर' उनकी कविता का एक आवर्ती बिम्ब है। उस 'घर' में वस्तुएँ हैं तो लेकिन वे रिश्तों के कारण ही सार्थक हैं। उनका बहुत प्रसिद्ध गीत है-

'एक तुम्हारा होना/क्या से क्या कर देता है
बेज़ुबान छत,/दीवारों को/घर कर देता है
ख़ाली शब्दों में/आता है/ऐसा अर्थ पिरोना
गीत बन गया-सा/लगता है/घर का कोना-कोना
एक तुम्हारा होना/सपनों को/स्वर देता है
आरोहों-अवरोहों से/समझाने/लगती हैं
तुमसे जुड़कर/चीज़ें भी/बतियाने लगती हैं
एक तुम्हारा होना/अपनापन/भर देता है।'

सहज बोलचाल की भाषा में भरा हुआ गीत-द्रव पाठक-श्रोता भाव-स्नात करने की अद्‌भुत क्षमता रखता है। यह अनूठा शिल्प कवि को मिला कहाँ से है, इसका रहस्योद्‌घाटन इस आत्मवक्तव्य में है, "मैंने कमरे में बैठकर कम ही गीत लिखे हैं। यात्रा करते हुए, घर से बाहर निकल कर किसी काम से जाते हुए, कोई घटना, कोई दृश्य, कोई बिम्ब गीत में ढलने लगता है और गीत बन जाते हैं और फिर घर आकर उन्हें काग़ज़ पर उतार लेता हूँ। छोटे-छोटे गीत लिखता हूँ, क्योंकि गीत के आंतरिक शिल्प के वे अनुरूप होते हैं। गीत लेखन के समय वार्णिक या मात्रिक शब्दों की शर्तों में छूट ले लेता हूँ। विषयवस्तु को धन्य करने में, यह अलग बात है कि लयबद्धता का ध्यान बराबर बना रहता है। गीत सिर्फ़ गाने-गुनगुनाने के लिए ही नहीं, सुनने के लिए भी हो, इस बात का पूरा-पूरा ध्यान रखता हूँ"। उनके गीतों में उनका 'घर-परिवार, पास-पड़ोस, समाज और देश', उनके मित्र, उनके जिए हुए शहर, वहाँ की ज़मीन, प्रकृति... सब धड़कते हैं। उनका कहना है, "मेरा गीत आकाशचारी नहीं है, वह उड़ता भी है तो अपने घोंसले में बार-बार लौटने के लिए। स्वजन मेरी आकांक्षा भी है और जीवन-स्पन्दन भी"। 'घर की याद', 'चिट्ठियाँ भिजवा रहा है गाँव', 'मुन्ने का तुतलाता गीत' और ऐसे अनेक गीत कोरा भावुक मन का नोस्टेलजिया नहीं हैं बल्कि उनके उपर्युक्त कथन की पुष्टि हैं।

उनके अधिकतर गीतों में अपने समय का दर्द गूँजता है। अपनी समस्त सौन्दर्य-चेतना के बावजूद कविता यदि गूँगों की जुबान नहीं बन पाती तो उसकी प्रासंगिकता

सन्दिग्ध है। तिवारीजी के गीतों में मौजूद गहरा चिन्तन हालात की प्रामाणिक तस्वीर ही नहीं है, सामाजिक संघर्ष का दस्तावेज़ भी है। समय के दर्द को आवाज़ देना पलायन नहीं अपितु मनुष्यता-विरोधी ताक़तों को पहचान कर आम आदमी को सुन्न कर देने वाले उस दर्द का अहसास भी करवाना है, जिसका प्रतीकार अपेक्षित है। यह माहेश्वर ने ऐसे गीतों से बख़ूबी किया है।

माहेश्वर तिवारी के गीतों को इनकी भाषा ने युगीन प्रासंगिकता का वाहक बनाया है। लेखक का मानना है, "कविता में सपाटबयानी का क़ायल नहीं हुआ जा सकता। सपाट केवल गद्य हो सकता है, कविता नहीं।" सपाटबयानी के बरक्स जिस बिम्ब-प्रधान शिल्पतन्त्र की रचना माहेश्वर तिवारी ने की है, उसके लिए उन्होंने न तो अप्रचलित तत्सम शब्दावली का प्रयोग किया है, न ही अटपटे प्रयोग किए हैं बल्कि निकटतम जीवन से गृहीत शब्दों को एक विशेष शैली में प्रयुक्त किया है। वह शैली है- शब्दों को प्रतीक-सम्पन्न करते हुए अथवा उनको रूपकत्व प्रदान करते हुए क्रमशः बिम्बों को बुनते चले जाने की। यही बिम्ब-उन्मुखी रचनाशीलता जीवन की साधारण स्थितियों के बीच गंभीर अर्थ का अन्वेषण करती चलती है। हवा, नदी, चिड़िया, दूब, आँगन, खिड़की, बाज़, गौरैया, घर, बाँह जैसे साधारण शब्द अथवा प्रत्यय तिवारीजी के गीतों में असाधारण हो जाते हैं और अपने प्रयोग-वैशिष्ट्य के द्वारा अनेक नए अर्थों का उद्घाटन करते चलते हैं, क्योंकि उनमें लक्षणा एवं व्यंजना का समावेश उपर्युक्त शैली के द्वारा होता जाता है। कवि जब शोषणजन्य विसंगतियों को प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति प्रदान करता है, तब उसका स्वर यह होता है-

'कौआ उड़कर बड़ी दूर से/आया लेकर दाने
घर के चूल्हों की बदहाली/लगा हमें समझाने
कैसे गौरैया/आँगन से रिश्ते तोड़ रही है
और बाज़ के ख़तरों से/अपने को जोड़ रही है
कितने टिन की सन्दूकों के/ख़ाली हैं तहख़ाने।'

माहेश्वर तिवारी की युगीन सन्दर्भों को व्यक्त करने वाली ऐसी मार्मिक काव्य-पंक्तियाँ पाठक को हठात् बाँध लेती हैं- रूखी रोटी जैसी दोपहरी, क़र्ज़ों वाली पिछली शाम, होंठों पर जड़ दिए गए यात्राओं के संगीत, भूख में नीम के पत्ते चबा रहे हैं लोग, इन्द्रधनुष की तरह उजाला टूटा जहाँ-तहाँ, दाँतों में दबे हुए चावल-सा हमने यह पूरा जीवन जिया, डर अभी खड़खड़ाता घरों की साँकल, एक थरथराहट बोकर दुःख सब चले गए, बन्द हैं अब भी हरेपन से सभी संवाद, ऐसा क्यों लगता है/गीतों से भरा हुआ/मन जैसे हो बिलकुल ख़ाली, त्वचा में छुवनों सरीखी रेंगती हैं कहाँ से आकर हज़ारों चींटियाँ, जेबों ने सिरहाने रख दिए रिश्तों वाले सिक्के खोटे, नस-नस में तैर गया दर्द बुर्जुआ।' ये व्यंजनाएँ ही माहेश्वर के गीतों की शक्ति हैं। छंद, लय, वक्रताएँ,

बिम्ब, प्रतीक या रूपक उनकी कविता में जैसे-तैसे ढाँचे में फ़िट कर दिए जाने वाले पुर्ज़े नहीं हैं। इनकी सावयवता, सप्राणता ही जीवंत गीत सिरजती है। निम्नलिखित गीत की व्याख्या से उनके काव्य-शिल्प का सही परिचय हो सकता है-

'आस-पास/जंगली हवाएँ हैं,/मैं हूँ
पोर-पोर/जलती समिधाएँ हैं/मैं हूँ
आड़े-तिरछे/लगाव/बनते आते, स्वभाव
सिर धुनती/होंठ की ऋचाएँ हैं/मैं हूँ
अगले घुटने/मोड़े/झाग उगलते/घोड़े
जबड़ों में/कसती वल्गाएँ हैं/मैं हूँ।'

पुराने गीतों की तुलना में सबसे पहला तथ्य तो इस गीत से यह उभरता है कि इसमें बच्चन-युग के गीतों का विस्तार नहीं। ऊपर से दिखता है कि शायद इसमें कोई निश्चित छन्द व्यवस्था नहीं है, पर यह आभासित सत्य है। लय एवं कथ्य के आधार पर छन्द की इस पंक्ति को 'आस-पास जंगली हवाएँ हैं, मैं हूँ' को तीन पंक्तियों में तोड़ा गया है। यह भी लगता है कि टेक और अंतरा में मात्राओं की व्यवस्था एक-सी नहीं है और किसी मूल छन्द की व्यवस्था नहीं है पर यह 'लगना' वास्तविक नहीं है। नवगीत ने छन्द की शाश्वत जकड़न को अस्वीकार कर कथ्य के अनुरूप लचीला तो बनाया है लेकिन मूल लय को खण्डित नहीं होने दिया। मूल लय-संरचना को बनाए रखना छन्द के अधकचरे ज्ञान से सम्भव नहीं।

नवगीत के कथ्य में पारम्परिक गीत से बहुत अंतर है। कवि पहले ही शब्द से आपको परिवेश से जोड़ता है। हवाओं की उपस्थिति बताते हुए वह हवा के साथ एक विशेषण जोड़ता है, 'जंगली'। अब हवा मानवीकृत हो गई है पर यह मानवीकरण छायावादी नहीं है, जिसमें प्रकृति के माध्यम से कवि का 'स्व' व्यक्त होता है। यह वह परिवेश है जहाँ प्रकृति भी पात्रता प्राप्त करती, व्यक्तित्व प्राप्त करती है। 'जंगली' शब्द के उच्चारण के साथ पंजे उभरते हैं, नाख़ून उभरते हैं, हिंसक लाल आँखें और दाढ़ें उभरती हैं और ये सब हवा के साथ जुड़ जाती हैं। हवा और कहीं नहीं है, बहुत आस-पास है। इस हिंसकता के बहुत पास 'मैं' है। यह 'मैं' कवि है, आम आदमी है, जनता है। एक वचन नहीं बल्कि 'हम' है, हम जो इस हिंसक परिवेश में घिरे हैं। गीत में शब्द-प्रयोग किफ़ायती होना चाहिए। कवि ने छह शब्दों में दो वाक्य दिए हैं। 'है' और 'हूँ' दो क्रियाएँ हैं। दो वाक्यों से पूरे परिवेश को, उसकी भयावहता के साथ चित्रित कर दिया है। टेक पंक्ति की पूरक पंक्ति हैं 'पोर-पोर जलती समिधाएँ हैं, मैं हूँ।' जंगली हवाओं के साथ यदि समिधाएँ जल रही हैं तो केवल पोर-पोर तक उनकी जलन नहीं पहुँची, बल्कि इतिहास और संस्कृति के जलने का बिम्ब इसमें है। यह संस्कृति वर्चस्ववादी संस्कृति नहीं बल्कि जन-संस्कृति है जिसके जलने में मनुष्य के जलने की विडम्बना दिखती है। पूरा गीत दो छोटे-छोटे अंतरों में सम्पन्न हो जाता है। जंगली हवाएँ, जलती समिधाएँ और होठ की ऋचाएँ क्रमशः मानवीकृत होती हैं। यन्त्रणा, यातना और भयावहता की सघनता दूसरे अंतरे में बढ़ जाती है। एक बिम्ब उभरता है, "घोड़े अगले घुटने मोड़े झाग उगल रहे हैं और उनके जबड़ों में वल्गाएँ

कसती जाती हैं।" बेबसी ढोते आम आदमी का इससे संगत बिम्ब क्या हो सकता है! बार-बार पड़ते साँटों से आगे बढ़ने का प्रयास पर भूख-प्यास से बेदम होकर इस प्रयास की विफलता में अगले घुटनों का मुड़ना पूरे सन्दर्भ को व्याख्यायित कर देता है। इस समूचे सन्दर्भ को कवि हर टेक पंक्ति के साथ चुपके से आ बैठने वाले 'मैं हूँ' से मार्मिक बना देता है। इस 'मैं हूँ' में अनेक गूँजते हैं। 'मैं भयावह परिवेश के पास हूँ', 'मैं इस भयावह परिवेश का शिकार होने वाला हूँ', 'मैं इस भयावह परिवेश में होकर भी इसका प्रतिकार नहीं कर पा रहा'। असामाजिक तत्त्व, सत्ता की साँठ-गाँठ और क्रूर व्यवस्था के ख़ूँख़ार होने का बिम्ब इस गीत में उभरता है। इस गीत की लय और छन्दविधान पर ग़ौर कीजिए। गीत की लय एक करुणा को बहाती लगती है। एक सार्थक सफल नवगीत इसी प्रकार की समग्रता से जन्म लेता है। माहेश्वरजी ने ऐसे सैकड़ों गीत रचे हैं।

ख़ास बात यह है कि जीवन त्रासद ज़रूर है लेकिन कवि आशा की डोर को टूटने नहीं देता। माहेश्वर के गीत जिजीविषा और आशा का एक अद्‌भुत संसार रचते हैं। परिवेश त्रासद और भयानक है लेकिन सृजनात्मकता फिर भी नहीं हारेगी। विश्वास का यह स्वर मनुष्यता के लिए बहुत बड़ा संबल है। अति साधारण शब्दावली में इतनी बड़ी बात गीत में माहेश्वर ही कह सकते थे-

'ख़त्म नहीं होगा/वसंत का आना यह/हर बार
बारूदों पर नए सृजन की भाषा का संभार
बाहर-भीतर घटित/हो रहा रिश्तों का त्यौहार
बना रहेगा/रचते रहने का/जीवित संसार।'

माहेश्वर तिवारी द्वारा अपनी कविता के प्रेरणा-स्रोतों का यह उल्लेख उन्हें जीवन से जुड़ा कवि ही सिद्ध करता है, "मैं अपने कथ्य अपने समकालीन जनजीवन से उठाता हूँ। मुझे बिम्ब और भाषा के लिए किसी द्राविड़ प्राणायाम की आवश्यकता महसूस नहीं होती। हमारे आस-पास होती बतियाहट, जीवन के रस में डूबी शब्द सम्पदा स्वयं यह मिठास भर देती है। कविता में मैंने भवानीप्रसाद मिश्र और ठाकुर प्रसाद सिंह से मिठास को पहचानना और अपनाना सीखा है। मैंने कुमार गन्धर्व, पं. जसराज, किशोरी अमोनकर से संगीत की मिठास को अपने में महसूस किया है और फिर उसे अपने शब्दों, बिम्बों में पिरोने का प्रयास किया है। जिस तरह गन्ने से मिठास पाई जाती है ऊपर का सख़्त छिलका, गाँठें हटाकर। उसी तरह मैंने जीवन के खुरदुरेपन में भी मिठास पाने का प्रयत्न किया है। मैंने जीवन में रिश्तों को बहुत महत्व दिया है। सबको प्यार, अपनापन देने और सबसे पाने का आग्रही रहा हूँ। यह मिठास वहाँ से भी मिलती है। मेरे लिए घर मिठास का सबसे बड़ा स्रोत है। वहाँ से भाषा भी मिलती है और विचार भी।"

निस्सन्देह गीत के इस यात्रिक के सफ़र के ठहर जाने के बाद भी इसके गीत पाठकों के दिल और दिमाग़ में गूँजते रहेंगे। ❑



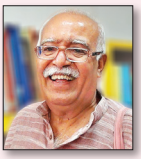
विष्णु प्रभाकर
जन्मदिवस

हिन्दी के अद्‌भुत साहित्य मनीषी

विष्णु प्रभाकर उन कथाकारों में से हैं जो पाठकों के दिलों में बसते हैं। उनकी शक्ति है दूर-दूर तक फैले पाठकों का स्नेह और प्यार, जिन्होंने उन्हें ख़ूब पढ़ा और सराहा। अपने हृदय के ऊँचे सिंहासन पर बैठाया। असंख्य पाठकों के दिलों में उनके लिए सम्मानपूर्ण स्थान है। पाठक आज भी उन्हें पढ़कर अभिभूत होते हैं और बहुत प्रेम से याद करते हैं।

विष्णु प्रभाकर हिन्दी के सिरमौर साहित्यकार हैं। वैसे तो उन्होंने साहित्य की तमाम विधाओं में लिखा है– कहानी, उपन्यास, नाटक, जीवनी, संस्मरण आदि-आदि, और लगभग हर विधा में उन्होंने कुछ नया और मूल्यवान जोड़ा है पर वे स्वयं मानते हैं कि उनके साहित्य की केन्द्रीय धुरी कहानी ही है। कहानी के साथ उनकी क़लम ख़ूब खेलती है और साथ-साथ पाठकों को जीवन के विशाल रंगमंच पर तमाम रंगों परिदृश्यों की अंतहीन छवियों के बीच यात्रा के लिए छोड़ देती है।

विष्णुजी ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि वे बचपन में दादी की कहानियाँ सुनते थे, तो उनका मन कल्पना के पंखों पर उड़ने लगता था। कहानी के अलौकिक आनंद का अनुभव उन्होंने तभी किया। बाद में 'चंद्रकांता', 'चंद्रकांता-संतति' और 'भूतनाथ' पढ़ा। 'क़िस्सा हातिमताई' और 'क़िस्सा साढ़े तीन यार' सरीखी पुराने दौर की रचनाएँ पढ़ीं तो क़िस्से-कहानी की शक्ति से परिचित हुए। कुछ आगे चलकर प्रेमचन्द को पढ़ा, जैनेन्द्र और चन्द्रगुप्त विद्यालंकार को पढ़ा तो मन कहानी लिखने के लिए ललक उठा और उनकी सृजन-यात्रा की शुरुआत भी एक कहानी से ही हुई। लाहौर से निकलने वाले पत्र 'हिन्दी मिलाप' में उनकी कहानी 'दीवाली के दिन' छपी थी। वही उनकी प्रकाशित पहली सृजनात्मक रचना थी।



प्रकाश मनु
ई-मेल : prakashmanu334@gmail.com

कुछ अरसे बाद विष्णुजी ने पत्र-पत्रिकाओं में नियमित लिखना शुरू कर दिया। धीरे-धीरे साहित्य जगत में उनकी एक अलग पहचान बनने लगी। प्रेमचन्द और जैनेन्द्र ने उनकी कहानियों को सराहा। विष्णुजी की कहानियों में शिल्प की पेचीदगियों के बजाय, भावना और करुणा की एक सहज धारा बहती थी। लिहाज़ा उनकी लिखी कहानियाँ पाठकों के दिल में उतर जातीं। देश के कोने-कोने में उन्हें सराहने वाले पाठक थे। बाद में 'धरती अब भी घूम रही है' कहानी छपी तो उनकी प्रसिद्धि दूर-दूर तक फैल गई। हिन्दी की प्रथम पाँत के कहानीकारों में उनका नाम लिया जाने लगा।



विष्णु प्रभाकर उन कथाकारों में से हैं जो पाठकों के दिलों में बसते हैं। उनकी शक्ति है दूर-दूर तक फैले पाठकों का स्नेह और प्यार, जिन्होंने उन्हें ख़ूब पढ़ा और सराहा। अपने हृदय के ऊँचे सिंहासन पर बैठाया। असंख्य पाठकों के दिलों में उनके लिए सम्मानपूर्ण स्थान है। पाठक आज भी उन्हें पढ़कर अभिभूत होते हैं और बहुत प्रेम से याद करते हैं।

जीवन के विविध रंग-रूपों और अनुभवों से सम्पन्न विष्णुजी की यह कथा-यात्रा हिन्दुस्तान के आम लोगों की ज़िन्दगी के कोई छह दशकों का जीवंत इतिहास भी है। पिछले दिनों साठ-पैंसठ बरसों में लिखी गई उनकी कोई पौने तीन सौ कहानियों को एक साथ पढ़ने का सुख मिला। मेरे जीवन का यह एक रोमांचक और कभी न भूलने वाला अहसास था।

इन कहानियों को पढ़ते हुए एक सवाल मेरे मन में था कि कई दशकों में फैली विष्णु प्रभाकर की कथा-यात्रा में ऐसा क्या है जो पुराना होकर भी पुराना नहीं पड़ता और हर पीढ़ी के लेखकों और पाठकों को लगभग एक जैसी कशिश के साथ खींचता है?

इसका जवाब भी कहीं और से नहीं, स्वयं विष्णु प्रभाकर की कहानियों के भीतर से ही मिलता है, जो तात्कालिक सवालों से जूझते हुए भी, अंततः मानवता या मनुष्य मात्र के बड़े, सार्वकालिक सवाल भी उठाती हैं और यों वे हमें अपने घेरे से बाहर आकर, एक बड़े आधार-फलक पर खड़े होकर चीज़ों को देखना सिखाती हैं। चाहे प्रेम और स्त्री को लेकर लिखी गई विष्णुजी की दर्जनों कहानियाँ हों या ग़रीबी और आर्थिक दुष्चक्रों को लेकर लिखी गई करुण और भावना से सीझी हुई कहानियाँ, देश-विभाजन की भीषण त्रासदी को लेकर लिखी गई दुःख-हाहाकार भरी कहानियाँ हों या मनुष्य-मन के क्षुद्र कोनों, कमज़ोरियों और यहाँ तक कि नीचताओं को भी उघाड़ती कहानियाँ, विष्णुजी प्रारम्भ सदैव एक छोटे लोकेल से करते हैं। हालाँकि कहानी का अंत आते-आते हम एक बड़े परिप्रेक्ष्य में, बड़े सवालों की बेचैनी और मनुष्य मात्र की एक बड़ी आस्था की रोशनी में ख़ुद को खड़ा पाते हैं।

विष्णुजी की कहानियों का असल जादू या उस्तादी है, जो उन्हें भारतीय जनता का

सच्चा, प्रमाणिक और अप्रतिम कहानीकार बना देता है। उनकी 'मुरब्बी', 'एक और कुंती', 'कैसी हो मारियम्मा', 'ज़िन्दगी : एक रिहर्सल', 'पुल टूटने से पहले', 'गर्विता', 'मेरा वतन', 'हरीश पांडे', 'सुराज', 'एक कहानी का जन्म', 'ताँगे वाला', 'अब्दुल्ला', 'जीवन एक कहानी', 'सच मैं सुन्दर हूँ' जैसी दर्जनों कहानियाँ पढ़ने के बाद मैं अब यह बात कह सकता हूँ कि विष्णु प्रभाकर की लम्बी और समृद्ध कथा-यात्रा अपनी कुछेक सीमाओं के बावजूद, निरंतर मूल्यांकन और नए सिरे से समझे जाने की चुनौती देती कथा-यात्रा है और उसे ठीक-ठीक समझे बग़ैर हिन्दी की कथा-यात्रा पर बात करना सम्भव ही नहीं है।



इसी तरह विष्णुजी के उपन्यासों की परिधि भी बड़ी है। हालाँकि यह एक अचरज ही है कि उपन्यास के क्षेत्र में विष्णुजी के यहाँ विषयों की विविधता इतनी अधिक नहीं है। स्त्री-पुरुष समानता, स्त्री के लिए सदियों पुरानी नैतिकता के बंधन और स्त्री मुक्ति के सवाल, विष्णुजी के अंतर्मन में इतने गहरे गड़े हुए हैं कि वे ही अलग-अलग रूपों में उनके उपन्यासों में आए हैं। प्रायः उनका हर उपन्यास इसी समस्या से जूझता है। देश, समाज और वैश्विक समस्याएँ तथा व्यक्ति-मन की अनेकानेक चिन्ताएँ इसी से घुली-मिली सी सामने आती हैं। हालाँकि प्रमुखता व्यक्ति मन के भीतरी उलझावों और नैतिक द्वन्द्व की है, जिनके साथ सत्य और मानवीय आदर्श सरीखे शाश्वत प्रश्न भी जुड़े हुए हैं।

विष्णुजी का पहला उपन्यास 'निशिकांत' छठे दशक के प्रारम्भ में आया था, 'ढलती रात' शीर्षक से। बाद में सन् 1955 में यह 'निशिकांत' शीर्षक से छपा। उनका अंतिम उपन्यास 'संकल्प' 1993 में प्रकाशित हुआ। इस तरह कालावधि के लिहाज़ से देखें तो उनके उपन्यासों का सृजन कोई चार दशकों में फैला हुआ है। इन चार दशकों में छपे विष्णुजी के छोटे-बड़े उपन्यास हैं– 'निशिकांत', 'तट के बंधन', 'स्वप्नमयी', 'संस्कार', 'कोई तो', 'अर्द्धनारीश्वर' और 'संकल्प'। इनमें 'स्वप्नमयी' और 'संस्कार' बीसवीं सदी के आख़िरी दशक में आए उपन्यास 'संकल्प' में ही समाहित हो गए। सन् 1992 में छपे 'अर्द्धनारीश्वर' को कुछ ही अरसे बाद, सन् 1993 में साहित्य अकादेमी सम्मान मिला और स्वाभाविक रूप से इसकी बहुत अधिक चर्चा हुई।

एक बहुआयामी सशक्त कथाकार के रूप में पाँचवें दशक में ही विष्णुजी को ख़ासी ख्याति मिल चुकी थी। अपनी स्वतन्त्र लीक बनाकर चलने वाले एक समर्थ उपन्यासकार के रूप में उनकी प्रसिद्धि भी बहुत जल्दी ही हो गई। संयोग से छठे दशक में प्रकाशित 'निशिकांत' की इतनी चर्चा हुई कि इस अकेले उपन्यास के बल पर ही विष्णुजी की गणना हिन्दी के सक्षम उपन्यासकारों में होने लगी। छठे दशक में 'निशिकांत' के बाद छपे उनके

उपन्यास हैं, 'तट के बंधन' (1955) और 'स्वप्नमयी' (1956)। इनमें 'स्वप्नमयी' उपन्यास 'धर्मयुग' में धारावाहिक रूप से छपा तो इसकी बहुत चर्चा हुई थी। बाद में कोई तेरह साल बाद सन् 1969 में यह पुस्तकाकार छपा। कुछ अरसे बाद इसका नया संस्करण आया तो शीर्षक किंचित बदल चुका था। इस बार यह 'स्वप्न' शीर्षक से प्रकाशित हुआ। इसी तरह सातवें दशक में लिखा गया विष्णुजी का उपन्यास 'दर्पण का व्यक्ति' (1968) सन् 1993 में 'संस्कार' शीर्षक से प्रकाशित हुआ।

इसके बाद छपे उनके उपन्यास हैं, 'कोई तो' (1980), 'अर्द्धनारीश्वर' (1992) और 'संकल्प' (1993)। इनमें 'संकल्प' का मूल विचार और कथा-भूमि वही है, जो 'स्वप्नमयी' और 'संस्कार की है। इसलिए विष्णुजी ने 'स्वप्नमयी' और 'संस्कार' लघु उपन्यासों को भी अपने नए उपन्यास 'संकल्प' में ही शामिल कर लिया। यों विष्णुजी का 'संकल्प' एक तरह से लघु-उपन्यास त्रयी है, पर एक साथ पढ़ने पर ये तीनों उपन्यास इस तरह आपस में घुल-मिल से जाते हैं कि 'संकल्प' कुल मिलाकर प्रेम और स्त्री अस्मिता के प्रश्न को लेकर लिखी गए किसी एक सशक्त कृति का सा प्रभाव छोड़ता है। 'अर्द्धनारीश्वर' स्त्री अस्मिता को लेकर लिखा गया उनका सर्वाधिक चर्चित उपन्यास है, जिसे साहित्य अकादेमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

'आवारा मसीहा' के पचास वर्ष

विष्णुजी मूलतः कथाकार हैं, पर आश्चर्य, उनके द्वारा लिखी गई शरत की औपन्यासिक जीवनी को जो चतुर्दिक ख्याति मिली, वह हिन्दी साहित्य की एक विरल और ऐतिहासिक घटना है। हिन्दी में जीवनी साहित्य बहुत लिखा गया, पर शरत की जैसी शाहकार जीवनी विष्णु प्रभाकर ने लिखी, वह अपने-आप में एक मयार है। किसी बड़े और बहुमुखी साहित्यिक प्रतिभा के धनी लेखक की सुन्दर और सांगोपांग जीवनी कैसी होनी चाहिए, उसे किस तल्लीनता से लिखा जाना चाहिए, इसे 'आवारा मसीहा' पढ़कर जाना जा सकता है। सच तो यह है कि अपने अथक श्रम और अतुलनीय समर्पण से विष्णुजी ने हिन्दी में जीवनी साहित्य को जिस असंभव लगती ऊँचाई तक पहुँचा दिया, वह आज भी बहुतों के लिए स्पृहणीय है।

'आवारा मसीहा' शरत सरीखे बड़े क़द के साहित्यकार की एक सम्पूर्ण जीवनी तो है ही, पर इसके साथ ही वह एक ऐतिहासिक महत्व की कृति बन गई, जिसमें सर्जना का अपार सौन्दर्य है। यही उसे विलक्षण बनाता है। उसमें जितनी गहराई है, उतना ही भावनाओं का विस्तार भी, जितना असाध्य श्रम है, उतनी ही रस में ऊभ-चूभ करती सृजनात्मकता भी। किसी उपन्यास से ज़्यादा रोचक और रसपूर्ण होने के साथ ही, उसमें किसी नदी की अजस्र धारा जैसा प्रवाह है और हर क्षण मन में यह जिज्ञासा और कौतुक बना रहता है कि आगे अभी और क्या सामने आना है, अभी क्या कुछ और उस रहस्य के परदे से बाहर आना है, जिसने जाने-अनजाने शरत के व्यक्तित्व को ढककर, उसे असंख्य किंवदतियों का विषय बना दिया है।

सच पूछिए तो 'आवारा मसीहा' शरत के जीवन से जुड़े तथ्यों की पुनः खोज ही नहीं, यह एक तरह से शरत का पुनराविष्कार है, यानी 'ए डिस्कवरी ऑफ़ शरत'। शरत सरीखे बड़े क़द के और कुछ-कुछ बोहेमियन क़िस्म के बीहड़ साहित्यकार की जीवनी ऐसी ही हो सकती थी।

विष्णुजी ने ख़ुद को समूचा झोंककर शरत की जीवनी लिखी पर लिखने के बाद

संभवतः विष्णु प्रभाकर भी वही नहीं रह गए, जो इस जीवनी को लिखने से पहले थे। उनकी पहचान ही नहीं, साहित्यिक परिचय भी हमेशा-हमेशा के लिए बदल गया था। अब वे घर-घर 'आवारा मसीहा' वाले विष्णु प्रभाकर के रूप में जाने जा रहे थे। हिन्दी के हज़ारों पाठकों ने 'आवारा मसीहा' को पढ़ा और पढ़ते ही सबके होंठों पर बस एक ही शब्द सुनाई देता, "अद्‌भुत...!"

वस्तुतः 'आवारा मसीहा' शरत की प्रमाणिक जीवनी ही नहीं, उन पर बहुत सूक्ष्म ब्योरों के साथ बनाई गई किसी सजीव फ़िल्म सरीखी भी लगती है, जिसमें आप शरत को विभिन्न मूड्स और स्थितियों में बोलते-बतियाते देखते हैं तो कभी एकदम चुप, उदास। कभी-कभी गम्भीर चिन्तन क्षणों में निमग्न। इसे पढ़कर वाक़ई शरत से मिल लेने जैसी गहन अनुभूति होती है। यही शायद 'आवारा मसीहा' की अपार लोकप्रियता का रहस्य भी है। कोई आश्चर्य नहीं कि सन् 1974 में प्रकाशित हुई शरत की जीवनी 'आवारा मसीहा' के दर्जनों संस्करण आ चुके हैं और इसकी लोकप्रियता निरंतर बढ़ती ही जा रही है।

'आवारा मसीहा' का प्रकाशन निस्संदेह साहित्य जगत की एक बड़ी घटना थी। हिन्दी के साहित्यिक भी अब बड़े गर्व के साथ कह सकते थे कि हिन्दी में भी एक ऐसी जीवनी है, जिसमें एक उपन्यास सरीखी रोचकता है, महाकाव्य सरीखी गहराई है और जिसने इस विधा की सर्वोच्च ऊँचाइयों को छुआ है। अपने समय की प्रतिष्ठित पत्रिका 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' ने 'आवारा मसीहा' के प्रकाशन पर उसका अभिनंदन करते हुए ठीक ही लिखा था–

"'आवारा मसीहा' के लेखक का हम सभी को हदय से कृतज्ञ होना चाहिए, जिन्होंने शरत के जीवन में छिपे हुए बहुमूल्य रत्नों को बड़े ही परिश्रम से खोजकर, हिन्दी जगत् के आगे बड़े ही करीने से सँजोकर उपस्थित करके उक्त महालेखक के पुण्य प्रसंग नए सिरे से चलाने का अवसर हमें प्रदान किया है। यह जीवनी सचमुच साहित्य का एक गौरव-ग्रंथ है, जो विविध पाठकों को विविध प्रकार की प्रेरणाएँ देता है और जिसने बांग्ला पाठकों से भी अधिक हिन्दी पाठकों के आगे शरत को निकटतर लाने में अभूतपूर्व सफलता पाई है। 'आवारा मसीहा' भारतीय साहित्य में एक घटना है।"

विष्णु प्रभाकर हिन्दी के सदाबहार साहित्यकार हैं, जिन्होंने जीवनभर लिखा, और जो भी लिखा बेमिसाल लिखा। उनके द्वारा लिखे गए हिन्दी के कालजयी साहित्यकारों के संस्मरण हों, आत्मकथा, या यात्रा-वृत्तांत सभी हिन्दी साहित्य में बहुत कुछ नया और मूल्यवान जोड़ते हैं। यहाँ तक कि उन्होंने कविताएँ भी लिखीं, और उनमें एक अद्‌भुत पुकार-सी है। साथ ही उनकी धुनी शख़्सियत की एक अलग पहचान भी। आज भी उनकी यह कविता हमारे दिलों में एक गहरी दस्तक देती है–

मैंने प्रकाश को उगते हुए देखा है अंधकार में
मैंने शब्द को उगते हुए देखा है शून्य में
कहीं भी थकी नहीं है दृष्टि
कहीं भी रुकी नहीं है सृष्टि
इसलिए शब्द शब्द नहीं रहा मेरे लिए
अर्थ हो गया है
सृष्टि सृष्टि नहीं रही दृष्टि हो गई
फिर भी रुका नहीं हूँ मैं
चलता चला आ रहा हूँ, चलता चला जाऊँगा
क्योंकि मुझे अभी दृष्टि को अर्थ देना
और अर्थ को उसका आकार देना है
इसलिए चलता चला आ रहा हूँ
चलता चला जाऊँगा... ❑



विष्णु प्रभाकर
जन्मदिवस

अजातशत्रु आपुन जन

यों तो विष्णु प्रभाकर का समस्त लेखन ही सामाजिक विषमताओं और विसंगतियों से होते हुए मानवीय मूल्यों और संवेदनाओं की प्रतिष्ठापना करता है। उनके नाटक और कहानियाँ युगीन यथार्थ का चित्रण करने के साथ-साथ उच्चतर मानव-मूल्यों, आदर्शों और सिद्धांतों की स्थापना के लिए सचेष्ट दिखाई देती हैं। एक रचनाकार की हैसियत से, गाँधीवादी होने के नाते विष्णुजी को आदर्शवादिता अधिक प्रिय रही। इसके बावजूद उनकी अनेक कहानियों में यथार्थ का अंकन बहुत सशक्त ढंग से हुआ है। इस संदर्भ में 'धरती अब भी घूम रही है' शीर्षक एक अत्यंत महत्वपूर्ण कहानी का उदाहरण दिया जा सकता है।



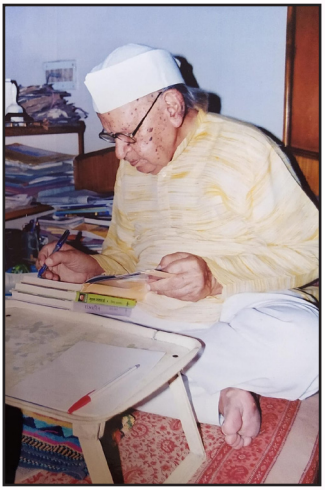
योगेन्द्र दत्त शर्मा
ई-मेल : yogendradattsharma3110@g mail.com

कथाशिल्पी विष्णु प्रभाकर अत्यंत सहज-सरल और सौम्य व्यक्तित्व के धनी थे ...एकदम अजातशत्रु! अपने आचरण और व्यवहार में वह पूरी तरह गाँधीवादी थे। सादगी और सरलता उनकी रेखांकनीय विशेषता थी। खादी का सफ़ेद कुर्ता-पाजामा और जवाहर कट बास्केट तथा वैसी ही टोपी– यही उनकी वेशभूषा थी, जो जीवन-पर्यन्त रही। वह 'सादा जीवन, उच्च विचार' वाले सुभाषित में अनन्य आस्था रखने वाली उस पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करते थे, जो गाँधीवादी मूल्यों और मान्यताओं से बेहद गहराई तक प्रभावित रही। अपनी इन्हीं विशेषताओं के चलते विष्णुजी हर वर्ग, हर पीढ़ी के श्रद्धेय और आदरणीय बने रहे।

विष्णुजी का घर पुरानी दिल्ली के उस मुहाने पर था, जहाँ से नई दिल्ली के लिए प्रवेश द्वार खुलता है। वह कुंडेवालान नामक मोहल्ले में रहते थे, जो एक ओर पुरानी दिल्ली के ठेठ परम्परागत इलाक़े बाज़ार सीताराम से सटा हुआ है, तो दूसरी ओर उस सड़क की तरफ़ जाने वाली गली से जुड़ा हुआ है, जो नई दिल्ली के सबसे अधिक जगमगाते इलाक़े कनॉट प्लेस ले जाती है। एक तरह से विष्णुजी की रिहाइश उस क्षेत्र में थी, जो पारम्परिक और अधुनातन संस्कृतियों को जोड़ती है। अपने इस आवास से वह नियमित रूप से हर शाम को

कनॉट प्लेस के निकट मोहन सिंह प्लेस के कॉफ़ी हाउस जाया करते थे, जहाँ लेखकों, साहित्यकारों और पत्रकारों का जमघट जुटा करता था। वहीं एक दिन विष्णु जी से पहली बार मुलाक़ात हुई थी।

यह मुलाक़ात मेरे अग्रजवत पंकज बिष्ट के माध्यम से हुई थी। पंकजजी (प्रताप सिंह बिष्ट) 'आजकल' के सम्पादक थे। मैं भी उनके साथ पत्रिका में ही था। ऑफ़िस से छुट्टी करके शाम को वह नियमित रूप से कॉफ़ी हाउस जाया करते थे। एक दिन वह मुझे भी अपने साथ ले गए। वहाँ बहुत-से लेखकों से सलाम-दुआ करते हुए आगे बढ़े। एक टेबल के पास की कुर्सी पर विष्णुजी विराजमान थे... अपने युवा साथियों के आने की प्रतीक्षा करते हुए। हमने हाथ जोड़कर अभिवादन किया और उनके पास पड़ी ख़ाली कुर्सियों पर बैठ गए। बिष्टजी ने मेरा परिचय कराया, "विष्णुजी, ये योगेन्द्र दत्त शर्मा हैं। ...मेरे साथ 'आजकल' में ही काम करते हैं।"



विष्णुजी ने मिलाने के लिए हाथ बढ़ाया, तो मैंने पुनः हाथ जोड़ दिए।

"कैसे हैं, योगेन्द्रजी?" वह बोले, "आज पहली बार देख रहा हूँ आपको! कॉफ़ी हाउस नहीं आते क्या?"

"जी, मैं ग़ाज़ियाबाद रहता हूँ! घर समय से पहुँचना होता है, इसलिए इधर आना नहीं हो पाता!" मैंने कहा, "आप मेरे पिताजी को जानते होंगे! मेरे पिताजी का नाम श्री कन्हैया लाल 'मत्त' है।"

मेरे पिता अक्सर विष्णुजी का ज़िक्र करते थे। पिताजी केन्द्रीय सचिवालय के एक ऑफ़िस में नौकरी करते थे। इस सिलसिले में वह केन्द्रीय सचिवालय आने-जाने वाली बस में सफ़र करते थे। इसी बस में आते-जाते विष्णुजी से उनकी मुलाक़ात हो जाया करती थी। विष्णुजी तब रेडियो में काम करते थे। इसी बात को आधार बनाकर मैंने उनके सामने पिताजी का सन्दर्भ दिया।

"अच्छा!" वह बहुत प्रसन्न हुए, "आप उनके सुपुत्र हैं!... मत्तजी तो हमारे पुराने मित्र हैं! कैसे हैं वह? बरसों हो गए उनसे मिले हुए!"

थोड़ी देर इधर-उधर की बातें होती रहीं। इसके बाद मैं वहाँ से चला आया। इसके बाद विष्णुजी से चार-पाँच मुलाक़ातें और हुईं। एक बार उनके पचहत्तर वर्ष पूरे होने पर मोहन सिंह पैलेस के पास हुए एक समारोह में भी मैं शामिल हुआ। एक बार मैं अपने किसी मित्र के साथ उनके घर भी गया।

कॉफ़ी हाउस में आने वाले लेखक, पत्रकार अलग-अलग मान्यताओं और विचारधाराओं से सम्बन्ध रखते थे। उनमें आपस में गरमागरम बहसें और कभी-कभी ज़बर्दस्त झगड़े भी हो जाया करते थे लेकिन वे सभी समान रूप से विष्णुजी का आदर

किया करते थे।

विष्णुजी इस सम्मान की पात्रता रखते थे... न केवल वयोवृद्ध होने के नाते, बल्कि एक क़द्दावर साहित्यकार होने के नाते भी। इससे भी अधिक यह पात्रता उन्होंने अपनी सरलता, सौम्यता और गुरुगंभीरता के बल पर अर्जित की थी।

कैसा विचित्र संयोग है कि हिन्दी साहित्याकाश के कुछ शीर्षस्थ नक्षत्रों का जन्म लगभग एक ही समय में हुआ। अज्ञेय, नागार्जुन, शमशेर बहादुर सिंह, त्रिलोचन शास्त्री, केदारनाथ अग्रवाल और विष्णु प्रभाकर पिछली शताब्दी के दूसरे दशक के प्रारम्भिक वर्षों में ही यानी 1910-11-12 के दौरान पैदा हुए। इस नक्षत्रमाला में अकेले विष्णुजी ही थे, जो विशुद्ध गद्यकार थे। शेष सभी प्रमुखतः कवि थे।

विष्णु प्रभाकर का जन्म 21 जून, 1912 को उत्तर प्रदेश के मुज़फ़्फ़रनगर ज़िले के मीरापुर नामक क़स्बे में एक वैश्य परिवार में हुआ था। पिता दुर्गा प्रसाद धार्मिक प्रवृत्ति के थे और माता महादेवी प्रगतिशील विचारों की सुशिक्षित महिला थीं, जिन्होंने पर्दा प्रथा का जमकर विरोध किया था। बाल्यकाल मीरापुर में बिताने के बाद विष्णुजी अपनी ननिहाल हिसार चले गए। वहाँ बी.ए. करने के बाद उन्होंने प्रभाकर की परीक्षा पास की। तत्पश्चात कुछ समय तक एक छोटी-सी नौकरी की।

विष्णुजी पर आर्यसमाजी विचारों के साथ-साथ गाँधीजी के आदर्शों और सिद्धांतों का गहरा प्रभाव पड़ा। उन्होंने सत्य, अहिंसा, देशप्रेम सहित गाँधीवादी विचारधारा को अपने आचरण और व्यवहार में अपनाया। स्वतन्त्रता संग्राम की लक्ष्य-प्राप्ति को उन्होंने अपने लेखन का उद्देश्य बना लिया। सदाचार, देशभक्ति, राष्ट्र-प्रेम, सामाजिक सरोकार उनकी कृतियों का मुख्य भाव बन गया। महात्मा गाँधी के आदर्शों और जीवन-मूल्यों की स्थापना में ही उन्हें अपने रचना-कर्म की सार्थकता दिखाई दी। वह नाटक और कहानी-लेखन तक ही सीमित नहीं रहे। उन्होंने उपन्यास, लघुकथा, संस्मरण, रेखाचित्र, डायरी, जीवनी, आत्मकथा, यात्रा-वृत्तांत आदि गद्य की विधाओं में भी प्रभूत लेखन किया। कुछ वर्षों तक आकाशवाणी के नाटक विभाग में नौकरी करने के बाद वह मुक्त होकर स्वतन्त्र लेखन करने लगे। शेष जीवन उन्होंने मसिजीवी रहकर बिताने का फैसला किया। यह एक कठिन फ़ैसला था, जिसका परिणाम सतत संघर्ष ही हो सकता था। यह संघर्ष विष्णुजी ने बड़ी गरिमा, ठसक, स्वाभिमान और शालीनता के साथ किया।

प्रौढ़ साहित्य के साथ-साथ विष्णुजी ने बच्चों के लिए बहुत-सा साहित्य रचा। इसमें बाल नाटक 'पानी आ गया' और कहानी-संग्रह 'गजनंदन लाल पहाड़ चढ़े' बहुचर्चित कृतियाँ हैं।

विष्णु प्रभाकर की कृतियों को पर्याप्त प्रशंसा के साथ-साथ न केवल लोक-स्वीकृति मिली, बल्कि उसे सराहा गया और सम्मानित-पुरस्कृत भी किया गया। उनके उपन्यास 'अर्द्धनारीश्वर' के लिए भारतीय ज्ञानपीठ की ओर से उन्हें प्रतिष्ठित मूर्तिदेवी सम्मान दिया गया। इसके अलावा उन्हें

साहित्य अकादमी पुरस्कार तथा सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार से भी सम्मानित किया गया। भारत सरकार ने उन्हें पद्मभूषण की उपाधि से अलंकृत किया।

विष्णुजी को उनकी कृति 'आवारा मसीहा' के लिए जो यश और प्रसिद्धि मिली, वह अतुलनीय है। कुछ लोगों का तो यहाँ तक मानना है कि विष्णुजी अगर कुछ और न भी लिखते, तब भी अकेली 'आवारा मसीहा' ही उनकी श्रेष्ठता और प्रतिष्ठा के लिए पर्याप्त होती। प्रख्यात बांग्ला कथाकार, उपन्यासकार शरतचन्द्र के जीवन पर आधारित इस कृति का हिन्दी जगत में अभूतपूर्व स्वागत किया गया ...यहाँ तक कि इसे विष्णु प्रभाकरजी के सम्पूर्ण कृतत्व का पर्याय ही मान लिया गया। स्वदेश में ही नहीं, विदेशों में भी इस कृति को बहुत सराहा गया। इसे 'पाब्लो नेरूदा सम्मान' तथा 'सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार' जैसे पुरस्कार मिले।

शरतचन्द्र की रचनाएँ हिन्दी सहित सभी भारतीय भाषाओं में अनूदित हुईं और ख़ूब पढ़ी गईं, लेकिन उनकी कोई प्रामाणिक जीवनी उपलब्ध नहीं थी। विष्णु प्रभाकर ने यह दुष्कर कार्य करने का बीड़ा उठाया। इसके लिए उन्होंने अनेक यात्राएँ कीं। पत्र-व्यवहार, भेंटवार्ता आदि के माध्यम से यह कार्य संपन्न किया। पहले 'आवारा मसीहा' का धारावाहिक प्रकाशन 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' में हुआ। इसके बाद पुस्तक रूप में प्रथम संस्करण मार्च 1974 में प्रकाशित हुआ। तब से अनेक संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। इस वर्ष इसके प्रकाशन की अर्द्धशती के रूप में मनाई जा रही है।

जीवनी लिखना विष्णुजी के लिए सुखद अनुभव नहीं रहा। शरतचन्द्र के समकालीन लोगों का उदासीन बल्कि नकारात्मक और असहयोगी आचरण बहुत निराश और हतोत्साह करने वाला रहा लेकिन विष्णुजी के दृढ़ संकल्प ने इस असंभव लग रहे कार्य को संभव कर दिखाया। इस बारे में विष्णु ने 'आवारा मसीहा' के प्रथम संस्करण की भूमिका में विस्तार से बताया है –

"कभी सोचा भी न था कि एक दिन मुझे अपराजेय कथाशिल्पी शरतचन्द्र की जीवनी लिखनी पड़ेगी। यह मेरा विषय नहीं था लेकिन अचानक एक ऐसे क्षेत्र से यह प्रस्ताव मेरे पास आया कि स्वीकार करने को बाध्य होना पड़ा। हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर, बम्बई के स्वामी नाथूराम प्रेमी ने शरत्-साहित्य का प्रामाणिक अनुवाद हिन्दी में प्रकाशित किया है। उनकी इच्छा थी कि इसी माला में शरत् चन्द्र की एक जीवनी भी प्रकाशित की जाए। उन्होंने इसकी चर्चा यशपाल जैन से की और न जाने कैसे लेखक के रूप में मेरा नाम सामने आ गया। यशपालजी के आग्रह पर मैंने एकदम ही यह काम अपने हाथ में ले लिया हो, ऐसा नहीं था, लेकिन अंततः लेना पड़ा, यह सच है। इसका मुख्य कारण था शरतचन्द्र के प्रति मेरी अनुरक्ति। उनके साहित्य को पढ़कर उनके जीवन के बारे में, विशेषकर श्रीकांत और राजलक्ष्मी के बारे में, जानने की उत्कट इच्छा कई बार हुई है। शायद वह इच्छा पूरी होने का यह अवसर था। सोचा, बांग्ला साहित्य में निश्चित ही उनकी अनेक प्रामाणिक जीवनियाँ प्रकाशित हुई होंगी। लेख-संस्मरण तो न जाने कितने

लिखे गए होंगे। वहीं से सामग्री लेकर यह छोटी-सी जीवनी लिखी जा सकेगी लेकिन खोज करने पर पता लगा कि प्रामाणिक तो क्या, कल्पित कहानी को जीवनी का रूप देकर अनेक पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं, पर उनमें शरत् बाबू का वास्तविक रूप तो क्या प्रकट होता, वह और भी जटिल हो उठा है।

अब मैंने इधर-उधर खोज आरम्भ की, लेकिन जैसे-जैसे आगे बढ़ता गया, उलझता ही गया। ढूँढ-ढूँढकर मैं उनके समकालीन व्यक्तियों से मिला। बिहार, बंगाल, बर्मा, सभी जगह गया लेकिन कहीं भी तो, कुछ भी उत्साहजनक स्थिति नहीं दिखाई दी। प्रायः सभी मित्रों ने मुझसे कहा, "तुम शरत् की जीवनी नहीं लिख सकते। अपनी भूमिका में यह बात स्पष्ट कर देना कि शरत् की जीवनी लिखना असंभव है।" ऐसे भी व्यक्ति थे जिन्होंने कहा, "छोड़ो भी, क्या था उसके जीवन में जो तुम पाठकों को देना चाहोगे? नितांत स्वच्छंद व्यक्ति का जीवन क्या किसी के लिए अनुकरणीय हो सकता है?" ..."उनके बारे में जो कुछ हम जानते हैं, वह हमारे बीच में ही रहे। दूसरे लोग उसे जानकर क्या करेंगे? रहने दो, उसे लेकर क्या होगा?"

इन प्रतिक्रियाओं का कोई अंत नहीं था, लेकिन ये मुझे मेरे पथ से विरत करने के स्थान पर चुनौती स्वीकार करने की प्रेरणा ही देती रहीं। सन् 1959 में मैंने अपनी यात्रा आरम्भ की थी और अब 1973 है। चौदह वर्ष लगे मुझे 'आवारा मसीहा' लिखने में। समय और धन दोनों मेरे लिए अर्थ रखते थे क्योंकि मैं मसिजीवी लेखक हूँ लेकिन ज्यों-ज्यों आगे बढ़ता गया, मुझे अपने काम में रस आता गया, और आज मैं साधिकार कह सकता हूँ कि मैंने जो कुछ किया है, पूरी आस्था के साथ किया है और करने में पूरा आनंद भी पाया है। यह आस्था और यह आनंद – यही मेरा सही अर्थों में पारिश्रमिक है।"

एक सही और ईमानदार लेखक को इससे अधिक और चाहिए भी क्या! यही उसकी एकमात्र पूँजी है।...

यों तो विष्णु प्रभाकर का समस्त लेखन ही सामाजिक विषमताओं और विसंगतियों से होते हुए मानवीय मूल्यों और संवेदनाओं की प्रतिष्ठापना करता है। उनके नाटक और कहानियाँ युगीन यथार्थ का चित्रण करने के साथ-साथ उच्चतर मानव-मूल्यों, आदर्शों और सिद्धांतों की स्थापना के लिए सचेष्ट दिखाई देती हैं। एक रचनाकार की हैसियत से, गाँधीवादी होने के नाते विष्णुजी को आदर्शवादिता अधिक प्रिय रही। इसके बावजूद उनकी अनेक कहानियों में यथार्थ का अंकन बहुत सशक्त ढंग से हुआ है। इस संदर्भ में 'धरती अब भी घूम रही है' शीर्षक एक अत्यंत महत्वपूर्ण कहानी का उदाहरण दिया जा सकता है।

यह कहानी दो अबोध बच्चों के माध्यम से घर, परिवार और सामाजिक-राजनीतिक स्तर पर व्याप्त भ्रष्टाचार की भयावह तस्वीर पेश करती है। यहाँ तक कि न्याय-व्यवस्था भी इसकी चपेट में आ जाती है। दस वर्षीय नीना और उसका आठ वर्षीय छोटा भाई कमल मातृविहीन हैं और पिता को दुर्भाग्यवश जेल भेज दिया गया है। इन

परिस्थितियों में दोनों बच्चों को अपनी मौसी के घर रहना पड़ रहा है, जहाँ दोनों बच्चे दुर्व्यवहार का शिकार होते हैं। उनसे नौकरों जैसा काम लिया जाता है। उन्हें ढंग से खाना भी नहीं दिया जाता। उनके रोने और आपस में बात करने पर भी प्रतिबंध है। इसके लिए उन दोनों को तरह-तरह से प्रताड़ित किया जाता है। बच्चे हर समय सहमे रहते हैं।

दस वर्ष की अबोध नीना परिस्थिति के दबाव में असमय ही समझदार और परिपक्व हो गई है। वह देखती है कि उनके मौसाजी रोज़ कहीं से रकम लेकर आते हैं और घर में छिपाकर रखते हैं। वह बच्चों के पिता को भी भला-बुरा कहते हैं, क्योंकि वह रिश्वत देने से साफ़ इनकार कर देते हैं। पिता की ग़लती यह थी कि घर का ख़र्च चलाने के लिए उन्होंने बीस रुपये की रिश्वत ले ली थी। यातना-भरे माहौल में बच्चों को पिता की याद सताती रहती है। माँ के न रहने पर वह बच्चों को अकेले ही पाल रहे थे। उन्होंने दूसरी शादी नहीं की थी। वह ख़ुद ही खाना बनाकर खिलाते थे। उनके लिए अच्छी-अच्छी किताबें और फल वग़ैरह भी लाते थे। पड़ोसी उनकी बहुत तारीफ़ करते थे। क्या वाक़ई उन्होंने रिश्वत ली होगी! पिता तो हमेशा यही कहते थे कि रिश्वत लेना पाप है लेकिन एक छोटी-सी ग़लती के लिए वही पिता दो महीने से जेल में बंद थे। बच्चे मन-ही-मन कल्पना करते हैं कि जेल से छूटकर वह जल्दी ही आ जाएँगे पर मौसी कहती हैं कि अभी उन्हें जेल में सात महीने और रहना है।

बच्चे परेशान हैं। वे खीझते हैं कि पिता आख़िर रिश्वत दे क्यों नहीं देते हैं! उन्होंने अपने मौसाजी के मुँह से ख़ुद सुना है कि रिश्वत से हर काम बन जाता है।

कहानी में नया मोड़ आता है। दृश्य बदलता है। स्थान और पात्र भी बदल जाते हैं।...

छोटे जज साहब का घर है। दावत दी जा रही है।

शराब पार्टी चल रही है। जज साहब के बेटे और बेटी का ऊँची नौकरी के लिए चयन हो गया है। रसूख़ और सिफ़ारिश के बल पर मिली सफलता की चर्चा हो रही है। तभी अर्दली आकर जज साहब से कहता है कि दो बच्चे मिलना चाहते हैं। जज साहब उन्हें अंदर बुला लेते हैं। सहमे, सकपकाए नीना और कमल प्रवेश करते हैं। आगे का क़िस्सा कथाकार विष्णु प्रभाकर के ही शब्दों में –

छोटे न्यायमूर्ति ने पूछा, "कहाँ से आए हो?"

"जी...जी..." नीना ने कहना चाहा, पर मुँह से शब्द नहीं निकले और बावजूद सबके आश्वासन के वे कई क्षण हतप्रभ, विमूढ़, अपलक देखते ही रहे, बस देखते ही रहे। आख़िर मनमोहिनी उठी। पास आकर बोली, "कितने प्यारे, कितने सुन्दर बच्चे हैं!"

इन शब्दों में न जाने क्या था! नीना को जैसे करंट छू गया। एकबारगी दृढ़ कंठ से बोल उठी, "आपने हमारे पिताजी को जेल भेजा है। आप उन्हें छोड़ दें।"

कमल ने उसी दृढ़ता से कहा, "हमारे पास पचास रुपये हैं। आपने तीन हज़ार लेकर एक डाकू को छोड़ा है।"

नीना बोली, "लेकिन हमारे पिताजी

डाकू नहीं हैं। महँगाई बढ़ गई थी। उन्होंने बस बीस रुपये की रिश्वत ली थी।"

कमल ने कहा, "रुपये थोड़े हों, तो..."

नीना बोली, "तो मैं एक-दो दिन आपके पास रह सकती हूँ।"

कमल ने कहा, "मेरी जीजी ख़ूबसूरत है और आप ख़ूबसूरत लड़कियों को लेकर काम कर देते हैं।"

जज साहब, उनके परिवार के सदस्य और आगंतुक मेहमान सकते में आ गए हैं। वे किंकर्त्तव्यविमूढ़ हैं। ऐसे में कहानी एक और मोड़ लेती है। कथा को परिणति तक पहुँचाने के लिए स्वयं कथावाचक का पदार्पण होता है–

रटे हुए पार्ट की तरह एक के बाद एक जब वे दोनों इस प्रकार बोल रहे थे, तो न जाने हमारे कथाकार को क्या हुआ, वह वहाँ से भाग खड़ा हुआ। उसे ऐसा लगा जैसे धरती सूर्य की चुंबक शक्ति से अलग हो रही है लेकिन ऐसा होता तो क्या हम 'पुनश्च' लिखने को बाक़ी रहते? धरती अब भी उसी तरह घूम रही है।....

कहानी यहाँ समाप्त हो जाती है। अब पाठक को चक्कर आने लगते हैं। उसे लगता है कि धरती के साथ-साथ उसका दिमाग़ घूम रहा है। गहरी संवेदना से अनुस्यूत इस कहानी का शिल्प भी अनोखा है। कुल मिलाकर यह मार्मिक कथा एक विश्वस्तरीय क्लासिक कहानी के हर आयाम को छू लेती है। ऐसा लगता है कि यह मानवीय गरिमा के उस उच्चतर स्तर की विजय है, जहाँ बड़े लोगों का क्रूर और कुरूप यथार्थ अंततः एक सरल, निश्छल मासूमियत के आगे निष्प्रभ और पराजित हो जाता है।...

कैसी विडंबना है कि 'धरती अब भी घूम रही है' के माध्यम से समाज के हर स्तर पर व्याप्त भ्रष्टाचार की पर्तें उधेड़ी थीं, अंततः स्वयं उसी का शिकार हो गए... वह भी अपनी अपनी निश्छल सरलता की वजह से! अपनी सहजविश्वासी प्रकृति के कारण वह ऐसे व्यक्ति की ठगी के चक्रव्यूह में फँस गए, जो कभी उनका निकटतम विश्वासपात्र था। उसने उनका मकान ही हड़प लिया। फिर शुरू हुआ न्याय-प्रक्रिया का अंतहीन सिलसिला, जिसके तहत भ्रष्टाचार की महागाथा और मानसिक यंत्रणा की त्रासद कथा सर्वविदित है। लम्बे समय तक विष्णुजी इस मानसिक यातना को झेलते रहे और विषम परिस्थितियों से लगातार जूझते रहे। उन्हें न्याय तो मिला, पर बड़ी देर के बाद।

विष्णुजी इस सन्दर्भ में हुए दारुण अनुभवों के आधार पर एक उपन्यास भी लिखना चाहते थे, पर यह नहीं हो सका। 11 अप्रैल, 2009 को 97 वर्ष की आयु में विष्णु जी की सात्विक जीवन-यात्रा को विराम मिल गया।

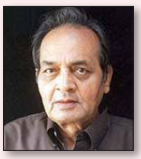
विष्णु प्रभाकर के मित्रों का एक वृहद मंडल था, जो आसेतु हिमालय व्याप्त था। अटक से कटक और कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक उनकी मित्रता का साम्राज्य रहा। मैं 'आजकल' में था, तब उनका एक संस्मरणात्मक आलेख प्रकाशनार्थ आया था, जिसका शीर्षक था 'मेरे आपुन जन'। संभवतः यह बालशौरि रेड्डी के बारे में था। मुझे यह शीर्षक बहुत भाया था पर लगता है कि स्वयं विष्णु प्रभाकर ही सबके 'आपुन जन' थे। अजातशत्रु तो वह थे ही। ❑



विष्णु प्रभाकर
जन्मदिवस
'आजकल', जून 2012 में प्रकाशित

कथा-सूत्र खोजने वाला शिल्पी

विष्णुजी का विशेष स्वभाव रहा है किसी भी नए मिलने वाले से आत्मीयता बनाकर उसके अंतर्मन में झाँक लेना। इतना ही नहीं, वे व्यक्ति के व्यवहार और जीवन से रचना के, कथा के सूत्र खोज निकालने में माहिर थे।
विष्णुजी की अनेकानेक विशेषताओं में उनका सभी के प्रति स्नेहभाव बनाए रखने वाला स्वभाव सबसे बड़ा गुण था। माँगलिक अवसरों पर यथासमय सब जगह पहुँचते थे।



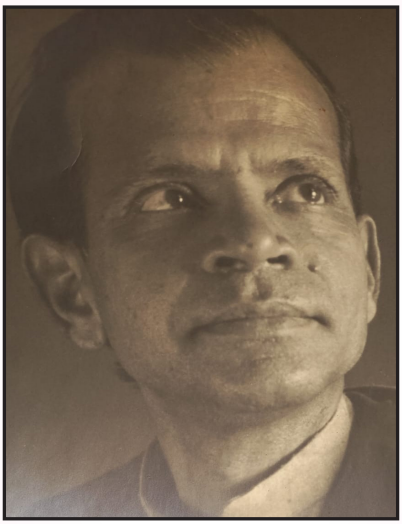
शेरजंग गर्ग
सुप्रसिद्ध कवि, आलोचक, सम्पादक
(29 मई, 1937 - 22 अप्रैल, 2019)

उन्नीस सौ पचपन-छप्पन के वर्षों में मैंने प्रभाकर त्रयी का नाम सुन-जान लिया था। प्रभाकर त्रयी से मेरा अभिप्राय सर्वश्री कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर, प्रभाकर माचवे और विष्णु प्रभाकर से है। तीनों प्रभाकर अपने-अपने अंदाज़ में साहित्याकाश में जगमगा रहे थे, अपनी आभा बिखेर रहे थे। कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर अपने संस्मरणों, राजनैतिक-सामाजिक टिप्पणियों, प्रेरणादायक निबन्धों और विलक्षण शैली के कारण प्रसिद्ध थे, तो प्रभाकर माचवे व्यंग्यकार, कवि-आलोचक, उपन्यासकार के रूप में जाने-माने जाते थे। विष्णु प्रभाकर एकांकी, नाटककार, उपन्यासकार, कथाकार के रूप में अपना स्थान बना रहे थे। संयोग की बात है कि तीनों गाँधीजी के परम अनुयायी थे। विष्णु प्रभाकर दोनों प्रभाकरों के बहुत निकट थे और प्रभाकर माचवे को अपना समानधर्मी अथवा जुड़वाँ मानते हुए उन्होंने एक विलक्षण लेख भी लिखा था, विष्णु प्रभाकर माचवे। यह लेख विष्णुजी की पुस्तक 'मेरे अग्रज मेरे गीत' में भी प्रकाशित है।

उस समय विष्णु प्रभाकर ने बांग्ला के महान उपन्यासकार शरतचन्द्र चट्टोपाध्याय पर अपना शोध कार्य शुरू कर दिया था। उनकी कहानियाँ भी चर्चा में आ गई थीं मगर यह न समझा जाए कि उन्होंने कविता

लिखने से परहेज़ रखा, विष्णु प्रभाकर कवि भी थे। उनके जाने के बाद उनकी कविताओं का संचयन 'चलता चला जाऊँगा' सन् 2010 में प्रकाशित हुआ। इसके अलावा विष्णुजी अनेक कवियों की पंक्तियाँ उद्धृत करके अथवा शायरों के अश्आर सुनाकर अपने काव्य-प्रेम से आनंदित करते रहते थे।

हाँ! ऐसे ही दौर में विष्णु प्रभाकर जैसे चमकते हुए नाम से परिचय हुआ। तब मैं बी.ए. का छात्र था और साहित्य का चस्का लग चुका था। साहित्य में जो कुछ मिलता पढ़ जाता और स्वयं कविताएँ भी लिखने लगा था। चकरौता रोड, देहरादून में 'साहित्य संसार' की गोष्ठियाँ हुआ करती थीं। वहीं विष्णुजी के रिश्तेदार जितेन्द्र गोयल अपना 'गोयल स्टूडियो' चलाते थे। विष्णुजी वहाँ प्रायः आते और साहित्य-संसार की गोष्ठियों में शामिल होते। उस समय विद्यास्वरूप वर्मा, ब्रह्मदेव, कैलाश भारद्वाज, श्रीराम शर्मा प्रेम, जगदीश नारायण माथुर, मनोहरलाल उनियाल श्रीमन, सुरेश भटनागर, शशिप्रभा शास्त्री, धर्मेन्द्र शास्त्री, जीत जरधारी सक्रिय 'संसद सदस्य' थे। महापंडित राहुल सांकृत्यायन, यशपाल और सत्यकेतु विद्यालंकार जैसे दिग्गज गोष्ठियों में प्रायः आते। विष्णुजी जब भी देहरादून आते गोष्ठी में आते। अपनी रचनाएँ, संस्मरण सुनाते और दूसरों की रचनाओं में गम्भीर विचार और टिप्पणी करते। इसलिए वे समस्त सदस्यों के परम आदरणीय बन गए थे। मेरे भी। सन् साठ में दिल्ली आने पर शाम के समय रीगल बिल्डिंग स्थित टी 5 हाउस में साहित्यकारों की महफ़िलें जमतीं थीं। विष्णुजी ने आकाशवाणी की नियमित नौकरी उन्हीं दिनों छोड़ दी थी, मगर कार्यक्रम करते रहते थे। कार्यक्रम हुआ तो संसद मार्ग से अथवा अपने घर कुंडेवालान से 'टी हाउस' ज़रूर जाते। उस समय वे टहलते हुए पैदल ही निकल आते थे। इसके अलावा विष्णुजी सस्ता साहित्य मंडल के कार्यालय में भी बैठते थे, जो कनॉट प्लेस में स्थित था। 'टी हाउस' में यों तो उनके सभी आत्मीय अनुज होते थे, मगर उनके टेबल पर सर्वश्री देवराज दिनेश, कमलेश्वर, मोहन राकेश, महीप सिंह, मोहन सिंह सेंगर, मुद्राराक्षस, राजीव सक्सेना, बलराज मेनरा, सुरेन्द्र प्रकाश, रमेश उपाध्याय, सुदर्शन चोपड़ा, सुरेन्द्र मल्होत्रा, श्याम मोहन श्रीवास्तव, ईश्वर सिन्हा और रामकिशोर द्विवेदी प्रायः मौजूद रहते थे। उस समय भी विष्णुजी गाँधी टोपी धारण करते थे जो उनके शीश पर मुकुट की तरह सजी होती थी। यह समय विष्णु प्रभाकर के साहित्यिक जीवन का स्वर्णाकाश था जबकि वह निरन्तर छप रहे थे, प्रसारित



युवा विष्णु प्रभाकर

हो रहे थे, दूरदर्शन पर कार्यक्रम कर रहे थे और प्रखर आलोचक नामवर सिंह ने उनकी कहानी 'धरती अब भी घूम रही है' को भावुकतापूर्ण बताकर आधुनिकता की दृष्टि से ख़ारिज कर दिया था।

विष्णु प्रभाकर मात्र गाँधीवादी नहीं थे अपितु गाँधी की सरलता, सादगी, स्पष्टवादिता और सौम्यता के साथ-साथ उनमें दृढ़तापूर्वक बात रखने का कौशल भी था। परस्पर बातचीत में, बहसों में यह गुण परिलक्षित होता रहता था। वह विनम्र स्वाभिमानी थे। किसी प्रकाशक, किसी संयोजक से उन्होंने कभी कुछ माँगा नहीं। रचना दे सके तो दी, आयोजन में जा सके तो गए अथवा असमर्थता प्रकट कर दी। उन दिनों मैं पण्डित गोपाल प्रसाद के अनुरोध पर हिन्दी भवन का काम देख रहा था। आयोजन के सिलसिले में तय किया गया कि उसकी अध्यक्षता करने के लिए विष्णुजी से अनुरोध किया जाए। तब विष्णुजी कुंडेवालान छोड़कर पीतमपुरा जा चुके थे। काफ़ी दूर हो गए थे। अनुरोध करने पर पहले तो उन्होंने बताया कि उस दिन आकाशवाणी सहित और भी कई कार्यक्रमों में जाना है, सम्भव न होगा। मैंने अनुरोध किया कि हमारा कार्यक्रम संक्षिप्त है, आप समय निकाल सकते हैं। इस पर विष्णुजी का संकोच भरा उत्तर, "हिन्दी भवन जाने के लिए थ्री व्हीलर वाला साठ रुपये से कम में तैयार नहीं होता।" "आप कृपया दिनभर की टैक्सी ले लीजिए। अन्य कार्यक्रमों से होते हुए हिन्दी भवन आ जाइए। सारी व्यवस्था हिन्दी भवन द्वारा कर दी जाएगी। आपकी प्रतीक्षा रहेगी।"

उस दिन 'धर्मवीर स्मृति' हिन्दी व्याख्यानमाला के अंतर्गत प्रख्यात आलोचक नामवर सिंह का व्याख्यान था और विष्णुजी को अध्यक्षता करनी थी। विष्णुजी आए और नामवर सिंह के प्रभावशाली व्याख्यान के बाद उन्होंने भी वैसा ही प्रभावशाली अध्यक्षीय व्याख्यान दिया।

इस घटना की तुलना में आज किसी को कहीं बुलाइए तो पूछने लगेंगे, क्या व्यवस्था रहेगी? मानदेय कितना है? विष्णुजी बुनियादी तौर पर श्रेष्ठ मनुष्य और उच्चकोटि के साहित्यकार रहे। इस सन्दर्भ में मुझे श्रेष्ठ कवि चन्द्रकान्त देवताले के ये शब्द याद आ रहे हैं। उन्होंने लिखा है, "जिस तरह मैं मनुष्य हूँ उसी तरह कवि। मनुष्य होना मेरा पेशा नहीं है वैसे ही कविता भी। जहाँ भी होता हूँ कषि और मनुष्य एक-साथ होने के कारण सबके बीच होने का अहसास होता है।" ठीक इसी तरह विष्णुजी उच्चकोटि के साहित्यकार तो थे, मगर लेखन को उन्होंने पेशा नहीं बनाया क्योंकि वे बहुत बड़े इंसान भी थे।

अपने समग्र बड़प्पन के बावजूद विष्णुजी कभी भी सामने बैठे व्यक्ति पर हावी होने की कोशिश नहीं करते थे। हमेशा सौहार्द्र देना, प्रोत्साहन देना तथा आशीर्वाद देना वह अपना दायित्व समझते थे। बात उन्नीस सौ चौहत्तर की है। मेरा शोध प्रबन्ध 'स्वातन्त्रयोत्तर हिन्दी कविता में व्यंग्य' प्रकाशित हो गया था। कविवर देवराज दिनेश को यह इतना पसन्द आया कि उन्होंने मालवीय नगर स्थित अपने आवास में पुस्तक पर गोष्ठी का आयोजन कर डाला। आयोजन तय करने की तारीख़ से 'टी हाउस' में आने वाले साहित्यकारों को न्योतना शुरू कर दिया। पुस्तक की एक प्रति विष्णुजी को भिजवाया। अध्यक्षता करने के लिए राज़ी कर लिया गया। मैं संकोच में डूबता-उतराता

रहा। कुछ मित्रों को तो दूरी का वास्ता देकर आयोजन में आने की तकलीफ़ न करने का अनुरोध किया।

दिनेशजी के निश्चय के कारण नियत तारीख़ को गोष्ठी हुई। आस-पास के और दूरदराज़ के भी कई साहित्यकार गोष्ठी में आए। विष्णुजी की अध्यक्षता में रामावतार त्यागी, आदित्य, राधेश्याम प्रगल्भ, जयदेव तनेजा, जवाहर चौधरी, शमशेर सिंह, गिरीशचन्द्र त्रिपाठी आदि उस गोष्ठी में शामिल हुए। मेरे लिए यह प्रसंग अविस्मरणीय रहेगा कि विष्णुजी ने चार सौ बत्तीस पृष्ठ की उस पुस्तक को पढ़कर उनके द्वारा व्यंग्य सम्बन्धी वक्तव्य के उद्धरण पर भी नज़र डाल ली थी। फिर उन्होंने अपने अध्यक्षीय वक्तव्य में भी इसका उल्लेख किया। विष्णु जी के आशीर्वाद का यह सुपरिणाम निकला कि प्रस्ताव की ख़ूब चर्चा हुई। वह दूर-दूर तक पहुँची। यहाँ तक कि जब प्रसिद्ध शायर साहिर लुधियानवी को हिन्दी बुक सेंटर में नरेन्द्र कुमार वर्मा ने पुस्तक दिखाई तो वे बेसाख़्ता बोल पड़े "काश! मेरी कोई किताब ख़ूबसूरत छपी होती।"

बात छठे दशक के मध्य की है। जम्मू-कश्मीर सरकार के सांस्कृतिक विभाग द्वारा साहित्यिक-विमर्श और काव्यपाठ के लिए दिल्ली से कुछ लोगों के आमंत्रित किया था। देवराज दिनेश, वीरेन्द्र मिश्र, रामावतार त्यागी को और मुझे काव्यपाठ के लिए तथा विष्णु प्रभाकर को साहित्यिक-विमर्श के लिए। सभी पाँचों लोग दिल्ली से जम्मू के लिए रवाना हुए। होशियारपुर तक रेल से गए। उन दिनों ये गाड़ी होशियापुर तक हो जाती थी। आगे का सफ़र बस में हुआ। इस लम्बे सफ़र में विष्णुजी का सान्निध्य अत्यंत सरत, आशाप्रद तथा प्रेरणाप्रद रहा। ख़ासतौर से रामावतार त्यागी अपने आहड़ और विनोदी स्वभाव के कारण विष्णुजी से मज़ाक करते तो विष्णुजी मुस्कुराकर उनकी बातों का आनंद लेते हुए कोई और क़िस्सा सुना देते।

विष्णुजी का विशेष स्वभाव रहा है किसी भी नए मिलने वाले से आत्मीयता बनाकर उसके अंतर्मन में झाँक लेना। इतना ही नहीं, वे व्यक्ति के व्यवहार और जीवन से रचना के, कथा के सूत्र खोज निकालने में माहिर थे। इसी सफ़र में जम्मू में होशियारपुर लौटते हुए घी के कनस्तरों वाला एक व्यापारी भी मिल गया था। विष्णुजी ने उससे बातचीत से ही कथाबिन्दु खोज लिए और, शीघ्र ही एक कहानी साप्ताहिक हिन्दुस्तान में प्रकाशित भी हो गई। इस यात्रा में विष्णु जी के साथ सफ़र करते हुए महसूस हुआ कि बड़े चाहे वे कितने रहे हो, मगर इस बड़प्पन को उन्होंने कभी बोझिल नहीं होने दिया, उसे स्नेहिल बनाकर रखा।

छठे और सातवें दशक के बाद 'टी हाउस' बन्द हो जाने के उपरांत विष्णुजी का दरबार मोहन सिंह प्लेस स्थित कॉफी हाउस में लगने लगा था। विष्णुजी अपने दिनभर के व्यस्त कार्यक्रम के बाद, चाहे सस्ता साहित्य मंडल से अथवा कुंडेवालान से और चाहे महाराणा प्रताप एन्कलेव से कॉफ़ी हाउस आने लगे। कॉफ़ी हाउस में विष्णुजी की मेज़ के इर्द-गिर्द हिन्दी के अनेक लेखक जिनमें भीष्म साहनी, द्रोणवीर कोहली, राज किशोर द्विवेदी, योगेश गुप्त, भारत

भारद्वाज, राजकुमार सैनी, पंकज बिष्ट, रमेश उपाध्याय, राम कुमार कृषक, महेश दर्पण, हरपाल त्यागी आदि दिखाई पड़ते थे। कॉफ़ी के दौर चलते रहते और साहित्य-सम्मान से लेकर व्यक्तिगत सन्दर्भों में विमर्श चलता रहता।

तब विष्णुजी लगभग नब्बे वर्ष के हो चले थे। एक दिन कथाकार शेखर जोशी के सुपुत्र संजय जोशी का फ़ोन आया कि वह विष्णु प्रभाकर पर एक डाक्यूमेंट्री बना रहे हैं और चाहते हैं कि कॉफ़ी हाउस में उसकी शूटिंग हो, जिसमें उनके कॉफी हाऊस के सभी साथियों की शिरकत भी हो। इसके लिए उन्होंने अनेक साहित्यकारों को फ़ोन करके समय लिया। समय पर कॉफ़ी हाउस बुक कर लिया। शूटिंग के समय काफ़ी मात्रा में विष्णु प्रेमी साहित्यकार कॉफ़ी हाउस पहुँच गए। उस दिन की साहित्यिक रौनक़ देखते ही बनती थी। लेखकों ने कई मेज़ों को जोड़कर कुर्सियाँ भी खींच ली थीं। मुझे अच्छी तरह याद है कि उस दिन मौजूद समस्त लेखकों की कॉफ़ी और सांभर-वड़ों का सारा ख़र्च संजय जोशी ने ही चुकाया था। कैमरा फ़िट हो गया। शूटिंग शुरू हो गई। विष्णुजी बीच में बैठे थे। उनके सम्बन्ध में साहित्यकारों से एक-एक करके बातचीत होने लगी। विष्णु जी सबको टुकुर-टुकुर निहारते-सुनते रहे। ज्यों ही विष्णुजी से साक्षात्कार करने हेतु इंटरव्यूकर्ता बंधु मुख़ातिब हुए धम्म से एक बंदर मेज़ के बीच कूद पड़ा और वहाँ रखे पानी के गिलासों से पानी पीने लगा। विष्णुजी ने सबको इशारों से समझाया कि घबराने की कोई बात नहीं। पानी पिएगा, थोड़ा उछो-कूदेगा और चला जाएगा। दो-तीन मिनट बाद वह बंदर बिना उत्पात मचाए चला गया। शूटिंग चलती रही। इस डाक्यूमेंट्री में बंदर वाला सीन भी ज्यों-का-त्यों दिखा दिया गया।

बंदर के जाने के बाद एक साहित्यकार ने विनोदपूर्ण कहा, "विष्णुजी लगता है यह बंदर भी आपका पुराना पाठक है। आप पर फ़िल्म बने और उसमें उसकी मौजूदगी न हो, यह कैसे सम्भव था।"

सब हँस पड़े थे और विष्णुजी की ख़ुशी सातवें आसमान पर थी।

अपनी महान कृतियों 'आवारा मसीहा', 'अर्द्धनारीश्वर' तथा श्रेष्ठ कहानी 'धरती अब भी घूम रही है' के कारण तो विष्णुजी कालजयी रहेंगे ही, उनके संस्मरण तथा रेखाचित्र भी उनकी कीर्ति-कथा का काम करते रहेंगे। 'मेरे अनुज मेरे मीत' तथा 'राह चलते-चलते' उनकी ऐसी ही कृतियाँ हैं। इन पुस्तकों में उन्होंने अपने अनुजों और वरिष्ठों को सादर याद किया है तथा यदाकदा मिल जाने वाले स्नेहियों का भी चित्रण किया है।

विष्णुजी की अनेकानेक विशेषताओं में उनका सभी के प्रति स्नेहभाव बनाए रखने वाला स्वभाव उनका सबसे बड़ा गुण था। माँगलिक अवसरों पर यथासमय सब जगह पहुँचते थे। जाना संभव न हो तो पत्र ज़रूर लिखते थे। किसी की कोई रचना पसन्द आती तो प्रशंसा में पत्र अवश्य लिखते थे मगर 5 कविता-प्रेम भी कम नहीं था।

मुझे विश्वास है कि आने वाले समय में उन्हें एक महान रचनाकार के अलावा श्रेष्ठ इंसान के रूप में भी याद किया जाता रहेगा। ❑

मौन ही मुखर है

विष्णु प्रभाकर

कितनी सुन्दर थी
वह नन्हीं-सी चिड़िया
कितनी मादकता थी
कंठ में उसके
जो लाँघकर सीमाएँ सारी
कर देती थी आप्लावित
विस्तार को विराट के
कहते हैं
वह मौन हो गई है-
पर उसका संगीत तो
और भी कर रहा है
गुँजरित-
तन-मन को
दिगदिगंत को
इसीलिए कहा है
महाजनों ने कि
मौन ही मुखर है
कि वामन ही विराट है।

('चलता चला जाऊँगा')





पहले तमाम अख़बारों में चित्रों के लिए भरपूर जगह रहती थी लेकिन अब अख़बारों में वैसे चित्र नहीं छपते। चित्रों को अधिकाधिक स्थान देने वाली तमाम पत्रिकाएँ कभी की बंद हो गईं। मोबाइल में कैमरे आने के बाद कला छायांकन का काम संकट में पड़ गया है। मोबाइल फ़ोटोग्राफ़ी के अनियंत्रित विस्तार ने उत्कृष्ट एवं कलात्मक छायांकन को एक बारगी ही हाशिए पर धकेल दिया है।

वक़्त के साथ कैमरे बदलते रहे हैं

एक समय में 'धर्मयुग', 'सारिका', 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान', 'कादम्बिनी', 'रविवार' और 'मनोरमा' जैसी सुविख्यात पत्रिकाओं में राजकिशन नैन के सचित्र लेख और फ़ोटो फ़ीचर वर्षों तक निरंतर प्रकाशित हुए हैं। देहाती धरा की ऊष्मा से लेखक व छायाकार बने राजकिशन नैन के चित्र गँवई माटी की रागात्मक चेतना से आप्लावित हैं। रचनात्मक जिजीविषा के सहारे इन्होंने सृजनकर्म का अर्धशतक लगाया है। गाँव की भाषा, संस्कृति, रहन-सहन और कृषि संस्कृति की जड़ें इनके भीतर में बहुत गहरे तक समाई हुई हैं। गाँव की नैसर्गिक सम्पदा से ओत-प्रोत इनके अधिकांश चित्र लोग-बाग़, पशु-पखेरू, बाग़-बग़ीचों, खेत-खलिहान और पर्व-त्यौहार से जुड़े हैं। इनकी यायावरी, लगन, शौक और हुनर ने इनकी चित्र संपदा को कालजयी बनाया है।

*प्रस्तुत है, **राजकिशन नैन** से **अशोक बैरागी** की फ़ोटोग्राफ़ी कला पर हुई बातचीत के प्रमुख अंश–*

प्रश्न : गाँव-देहात और उसकी संस्कृति से जुड़े अनगिनत चित्र आपने खींचे हैं। एक सुन्दर चित्र को आप कैसे परिभाषित करेंगे?

उत्तर : प्रकृति की गोद में बसे गँवई-गाँव के मनभावन सौन्दर्य में जो अपूर्व कशिश है, उसे लाख चाहकर भी कैमरे की परिधि में नहीं लाया जा सकता।



अशोक बैरागी
ई-मेल : drashokkumarjrf@gmail.com

गँवई चित्रों में जो अनुपम लयात्मकता है, उसे शब्दों में नहीं बाँधा जा सकता पर चूँकि बचपन से ही गाँव मेरे उपास्य रहे हैं, इसलिए मेरे चित्र वहीं की आँचलिक गरिमा को दर्शाते हैं। सुन्दर चित्र को हमारे जीवन की तरह विराट और जीवंत होना चाहिए। सौन्दर्य संगीत की तरह अनिर्वचनीय अनुभूति है, जो हमें अलौकिक आनंद के क़रीब लाती है। फलतः ग्रामगंध से पगे और गँवई अस्मिता की अपूर्व अनुगूँज से युक्त अपने चित्रों को मैं ग्रामाँचलों का 'कोष' या 'इनसाइक्लोपीडिया' कह सकता हूँ।

आप गाँव से होकर भी कला के इस मुक़ाम तक कैसे पहुँचे?

अपनी मेहनत और अभ्यास के बूते पर गाँव या शहर का कोई भी व्यक्ति कला के काम में पारंगत हो सकता है। छायांकन कला के प्रति गहन अभिरुचि, घुमक्कड़ी का चाव और देहाती दुनिया का अद्‌भुत, अनखुला और अनचीह्ना आकर्षण मुझे यहाँ तक खींच लाया है।



राजकिशन नैन

आपके श्रेष्ठ चित्र किन विषयों से सम्बन्धित हैं?

विषयों की मत पूछिए। इनकी गणना नहीं की जा सकती। प्रकृति और मानव द्वारा निर्मित ग्रामीण परिवेश की चीज़ों को मैंने अपने कैमरे के ज़रिए पकड़ने का प्रयास किया है। अलबत्ता देश के देहाती अँचलों से जुड़े चित्रों में जो आकर्षण है, वह अविस्मरणीय है। देहाती पृष्ठभूमि से जुड़े मेरे चित्रों में मुझे ताज़े जुते खेत की-सी महक आती है।

गाँव में शुरू-शुरू में आपने किन विषय के चित्रों पर हाथ आज़माया?

जहाँ तक मुझे याद आता है कि अपना पहला चित्र मैंने गाँव की एक पनिहारी का खींचा था, जो हमारे गाँव के बूढ़े कुएँ के पारछे में खड़ी हुई डोल से पानी खींच रही थी। तदुपरांत मैंने एक ग्वाले का चित्र खींचा था, जो गाय का दूध दुहने के बाद बछड़े को उसकी माँ के थन चुँघा रहा था। उन्हीं दिनों मैंने हमारे गाँव के रौली सरोवर में भैंस की पूँछ पकड़कर तैरते हुए कुछ बच्चों के चित्र भी खींचे थे।

आपने जीवन में पहली बार कैमरा कब पकड़ा?

सन् 1971 के जून माह में मैंने कैमरा पकड़ा। तब मैंने शिमला स्थित 'तारादेवी' नामक जगह को बेस बनाकर पहाड़ी परिवेश के चित्र खींचे थे।

आपने अपने हाथों से पहली फ़िल्म कब डिवेलप की थी?

सन् 1975 में मैंने घर में डार्करूम बनाया और उन्हीं दिनों अपनी फ़िल्में खुद धोनी शुरू की थी।

किसी भी चित्र में पृष्ठभूमि को आप कितना महत्व देते हैं?

पृष्ठभूमि यानी बैकग्राउंड उतनी ही महत्वपूर्ण है, जितनी खुद विषय वस्तु। यदि मुझे चित्र के लिए अच्छा विषय मिल रहा है लेकिन बेहतर पृष्ठभूमि उपलब्ध नहीं है तो मैं उस विषय को छोड़ देता हूँ। अच्छी पृष्ठभूमि

फ़ोटो की ख़ूबसूरती को कई गुणा बढ़ा देती है।

सुन्दर चित्र खींचने के लिए किस तरह के कौशल की ज़रूरत पड़ती है?

सच बात तो यह है कि अच्छे चित्र के लिए प्रकाश और छाया के अंतर को समझने और उनके अनुरूप ख़ास अवसरों को पकड़ने का सतत अभ्यास करना पड़ता है। विद्या और हुनर की तरह फ़ोटोग्राफ़ी की कला भी संयोग, लगन और धैर्य से हमारे ज़ेहन में आती है जबकि जल्दबाज़ी से बना-बनाया काम बिगड़ता है। हर क्षण मौक़े की तलाश में रहने के साथ-साथ अपने आस-पास के परिवेश और पृष्ठभूमि को सूक्ष्मता से निहारना पड़ता है, तब जाकर बड़ी देर से कोई ठीक-सा चित्र हाथ लगता है। जब तक चित्र खींचने वाले का मन चित्र के साथ एकाकार नहीं होता, तब तक मैं उसकी कला के हर प्रयास को अधूरा मानता हूँ।

एक कुशल छायाकार को अच्छे चित्र पकड़ने के लिए कितना तप करना पड़ता है?

इसके लिए हमें जोखिम उठाने और जोखिम सहने की आदत डालनी पड़ती है। अच्छा छायाकार तो प्रयास करने पर कोई भी बन सकता है पर जो फ़ोटो की कमियों को दूर करके उन्हें अच्छे-से-अच्छा बनाने की फ़िराक में रहता है और अपनी लगन से काम करता है, सफलता उसी के चरण छूती है।

गाँवों का छायांकन अन्य छायाकारों द्वारा अब तक बड़े स्तर पर क्यों नहीं किया गया?

शहर के ज़्यादातर छायाकार शुरू से ही पाश्चात्य रीति-नीति का अंधानुकरण करते आए हैं। उन्हें गाँव में गंदगी, बीमारियाँ और पिछड़ापन नज़र आता है। इसलिए वे गाँवों का रुख़ न करके पिटी-पिटाई लीक पर चलकर काम चला रहे हैं। गँवई लोगों के प्रति मैंने उनमें श्रद्धा का भाव कम देखा है। एकाध अपवाद के सिवाए गाँवों को ठिकाना बनाकर उनका उद्देश्यपरक छायांकन किसी भी शहरी छायाकार ने नहीं किया।

किसी भी दूसरी कला की तरह फ़ोटोग्राफ़ी कला के भी कुछ तय नियम होते हैं। उन नियमों की जानकारी कैमरामैन के लिए कितनी ज़रूरी है?

नियम तो किसी भी कला के हों, बहुत उपयोगी होते हैं उनकी जानकारी होना अच्छी बात है पर यदा-कदा फ़ोटोग्राफ़ी के जिन नियमों को हम जानते हैं, उन्हें छोड़ना भी पड़ता है। उदाहरण के तौर पर अच्छे चित्र के लिए धूप हमेशा कैमरामैन की पीठ पर पड़नी चाहिए पर कई बार प्रकाश के विपरीत इतने शानदार चित्र बनते हैं कि जिनकी तुलना नहीं की जा सकती।

कहते हैं कि डार्करूम के अनुभव बहुत दिलचस्प होते हैं। इस बारे में आपका क्या कहना है?

डार्करूम में मैंने अनगिनत प्रिंट बनाए, हज़ारों फ़िल्में डिवेलप की और ढेरों स्लाइड यानी पारदर्शी बनाई। डार्करूम में अलग-अलग लाइट टाइमिंग देने से या रसायनों में फ़िल्म को ज़्यादा या कम समय तक रखने से अलग-अलग इफ़ेक्ट्स (प्रभाव) पैदा होते हैं। अगर पेपर का ग्रेड बदल दिया जाए तो चित्र का चरित्र बदल जाता है।

आपने छायांकन के लिए गाँव को ही क्यों चुना? जबकि चित्रों से जुड़ी बहुत सारी

बढ़िया चीज़ें तो नगरों और शहरों में भी ख़ूब मिलती हैं?

यदि मेरा जन्म गाँव में नहीं होता तो शायद मैं भूलकर भी कैमरे का मुँह-माथा नहीं देखता। मुझे लगता है प्रकृति मुझ पर ज़रूरत से ज़्यादा मेहरबान है। इसीलिए उसने मुझे हरियाणा के छोटे-से गाँव में पैदा किया। बेपनाह ख़ूबसूरती, पुरखों के पारम्परिक और श्रमसिक्त संस्कारों की वजह से ज़िन्दा हूँ। ग्रामधरा की सोहन संस्कृति के सुन्दर चित्र उतारने की लालसा मुझमें बचपन से ही है। गाँव को बिसारकर मैं एक क्षण के लिए भी जीवित नहीं रह सकता।

'चातक का जो नेह मेघ से' है, मेरा वही अपनापा गाँव से है। गाँव ने मुझे क़लम और कैमरा पकड़ने का संबल दिया है। ग्रामगंध और ग्राम परिवेश ने मेरे नायाब चित्रों की पूँजी में भारी इज़ाफ़ा किया है। गाँव में रहकर और यहाँ की माटी में लोट-पोट होकर मैं स्वयं को गौरवान्वित महसूस करता हूँ। मेरे प्राण गाँव में रचे-बसे हैं। अपने पुश्तैनी गाँव के अलावा देश के दूरस्थ अँचलों में बसे तमाम छोटे-बड़े गाँव मुझे सदैव अपनी ओर खींचते हैं। अपने कैमरे के ज़रिए मैं ग्राम और ग्राम्य संस्कृति के उजले पहलुओं को अमर करना चाहता हूँ।

आपका खींचा हुआ पहला फ़ोटो किस पत्रिका में छपा था और वह किसका चित्र था?

मेरा पहला फ़ोटो दो वृद्धों का चित्र था, जो 'ज़ूम फ़ोटो' नामक अंग्रेज़ी पत्रिका में 15 जून, सन् 1981 में छपा था। इस पत्रिका का सम्पादन अपने ज़माने की मशहूर शख़्सियत सादिया देहलवी करती थीं।

उस समय की बाल पत्रिकाओं में भी बच्चों के कलात्मक फ़ोटो ख़ूब छपते थे। क्या आपने कभी उनके लिए भी चित्र भेजे?

बच्चों की मशहूर मासिक पत्रिका 'पराग' के नियमित स्तंभ 'तस्वीर ने कहा' में मेरे चित्र ख़ूब छपे। बाद में भी जिन दिनों 'पराग' का काम कन्हैयालाल नंदन, हरिकृष्ण देवसरे और सर्वेश्वर दयाल सक्सेना जैसे दिग्गज देखते थे तब भी मेरे खींचे हुए बच्चों के मुँह बोलते चित्र इस पत्रिका में ख़ूब छपे। इसी तरह मासिक पत्रिका 'नंदन' में जयप्रकाश भारती ने मेरे चित्र कई बार बड़े चाव से छापे थे। 'बाल भारती' (मासिक) में छपे मेरे फ़ोटो ख़ूब पसन्द किए गए। 'बालहंस' के सम्पादक मनोहर वर्मा बच्चों के विविध विषयों के चित्र मुझसे मँगवाया करते थे।

एक समय था, जब मासिक पत्रिकाओं के अलावा दैनिक और साप्ताहिक समाचार-पत्र भी फ़ोटोग्राफ़ी कला के काम को काफ़ी स्थान देते थे। आपकी छायांकन कला को किन-किन अख़बारों ने जन-जन तक पहुँचाया?

बात सन् 1982 की है, जब 'पंजाबी ट्रिब्यून', 'पंजाब केसरी' और 'दैनिक ट्रिब्यून' आदि में मेरे चित्र छपने शुरू हुए। 'दैनिक ट्रिब्यून' के स्थायी स्तम्भ 'सप्ताह का चित्र' में वर्षों तक मेरे चित्र छपे। इसी अख़बार में 'शीर्षक बताइए' नामक स्तम्भ में भी अक्सर मेरे चित्र छपते थे। इसके बाद 'जनसत्ता', 'राजस्थान पत्रिका' और 'नवभारत टाइम्स' में मेरे चित्रों को जगह मिलने लगी थी।

यदि हम हिन्दी फ़िल्मों के छायांकन की बात करें तो कौन-कौन ऐसे नामवर छायाकर

हुए, जिन्होंने फ़िल्म फ़ोटोग्राफ़ी को एक नई दिशा प्रदान की?

हमारे देश में हिन्दी व दूसरी फ़िल्मों का छायांकन करने वाले एक से एक दिग्गज और नामवर छायाकार हुए हैं। इनमें सुब्रत मित्र, फल्ली यानी फाली मिस्त्री, वी.के. मूर्ति, नितिन बोस, राधू कर्माकर, विमल राय, कमल बोस, फ़रीदुद्दीन ईरानी, नरीमन ईरानी, मार्शल बिरगेंजा, चारुदत्त, प्रवीन भट्ट, प्रेमसागर, आलोक दास गुप्ता, एम. एन. मल्होत्रा और धर्म चोपड़ा आदि लोगों ने जिस ख़ूबसूरती से फ़िल्मों की फ़ोटोग्राफ़ी की है, उसे सिनेमा की दुनिया में सदैव याद रखा जाएगा। सत्यजीत रे की फ़िल्मों की फ़ोटोग्राफ़ी सुब्रत राय करते थे। इनमें वी.के. मूर्ति साहब को उनके छायांकन के योगदान के लिए 'दादा साहब फाल्के' पुरस्कार से नवाज़ा गया है।

मैंने 'जाल', 'प्यासा', 'काग़ज़ के फूल' तथा 'साहब, बीवी और गुलाम' जैसी फ़िल्मों में वी.के. मूर्ति के छायांकन का कमाल देखकर उनसे मिलने की ठानी।

क्या राष्ट्रीय स्तर पर पहचान रखने वाली फ़ोटोग्राफ़ी की किसी संस्था से भी आपका सम्बन्ध रहा है?

मैं पिछले चालीस वर्षों से 'फ़ेडरेशन ऑफ़ इंडियन फ़ोटोग्राफ़ी' और 'नेचर फ़ोटोग्राफ़र्ज़ एसोसिएशन का आजीवन सदस्य हूँ।

भारतीय कला छायांकन को नई ऊँचाइयों पर पहुँचाने वाले दिग्गज छायाकार देश में कौन-कौन हुए हैं?

मुझे भारतीय छायांकन के पितामह कहे जाने वाले आर. आर. भारद्वाज समेत ई. काशीनाथ, एन. त्यागराजन, पी. एन. नेहरा, आश्विन मेहता, पी. के. दे, एस. पाल, अविनाश पसरीचा, वामन ठाकरे, ओ.पी. शर्मा, मित्र बेदी, स्वामी सुन्दरानंद, अशोक दिलवाली और नरेश बेदी जैसे छायांकन को नए आयाम देने वाले मूर्धन्य छायाकारों से मिलने के कई अवसर मिले। अपने फ़न के माहिर ऐसे दिग्गजों की फ़ेहरिस्त काफ़ी लम्बी है।

आजकल डिजिटल और मिरर लैस कैमरों का बोलबाला है। बाज़ार में उनके आने से फ़ोटोग्राफ़ी की विधा में क्या बदलाव आए हैं?

डिजिटल कैमरों के आने से तकनीक के बदलाव में ज़मीन-आसमान का अंतर आ गया है। वक़्त के साथ कैमरे बदलते रहे हैं। सबसे पहले इंग्लैंड से कैमरे आए। इसके बाद कैमरे जर्मनी, फ्रांस और अमरीका से आयातित होने लगे। इस तरह एक के बाद एक बदलाव होते रहे। नई तकनीक और नए कैमरे फ़ोटोग्राफ़ी की विधा के लिए बेहद अनुकूल और उपयोगी हैं। इस विधि से फ़ोटो का जटिल काम बहुत सहज और सुगम हो गया है। इस विज्ञान के आने से एक सेकंड के हज़ारवें हिस्से में फ़ोटो खींचकर दुनिया के एक छोर से दूसरे छोर तक पहुँचाई जा सकती है। हमारे रोज़मर्रा के कार्यों में इस प्रविधि का जो प्रसार हुआ है, वह स्वागत योग्य है।

डिजिटल क्रान्ति से छायांकन कला पर क्या प्रभाव पड़ा है?

इस तकनीक के ज़रिए आम आदमी भी आसानी से फ़ोटो खींच सकता है। इस विज्ञान से फ़ोटोग्राफ़ी की विधा तीव्रता से पॉपुलर हो गई है। इससे फ़ोटोग्राफ़ी की राह में बाधा बनने वाली तमाम अड़चनें भी दूर हो गई हैं।

अकादमिक दृष्टि से आपका छायांकन का काम कितना महत्वपूर्ण है?

पहले के सारे चित्र अकादमिक महत्व के ही हैं। इन्हें केवल फ़ोटो न कहकर एक विशेष कालखण्ड का इतिहास कहा जा सकता है जिनकी उपयोगिता को देखते हुए सरकारी और ग़ैर सरकारी संस्थाओं को चाहिए कि वे इनका संरक्षण करने के साथ-साथ तत्परता से इनके प्रदर्शन की स्थायी व्यवस्था करें ताकि नई पीढ़ी इनसे लाभान्वित हो सके। हरियाणा साहित्य अकादमी पंचकूला, म. द. वि (रोहतक) के टैगोर ऑडिटोरियम और कु. वि. कु. के धरोहर संग्रहालय में मेरे चित्रों की स्थायी चित्रदीर्घाएँ हैं। युग बदलने के कारण पहले की अपेक्षा चित्रों की अहमियत लाख गुना बढ़ गई है। इसलिए इनके बचाव और रख रखाव की काफ़ी आवश्यकता है।

आपने तस्वीरें खींचते समय किस तरह के जोखिम उठाए हैं?

सुन्दर चित्रों के लालच में मुझे कई बार मौत तक के जोखिम उठाने पड़े हैं। फ़ोटोग्राफ़ी मेरी अस्मिता और मेरे अस्तित्व की सबसे बड़ी पूँजी है। डीग (भरतपुर) राजस्थान के क़िले की फ़ोटोग्राफ़ी करते हुए मैं साठ फ़ुट गहरे कुएँ में जा गिरा था। एक बार फूलों की घाटी की ओर जाते हुए एक ग्लेशियर से फिसलकर मैं अलकनंदा नदी में डूबते-डूबते बचा था। एक दफ़ा मैं अरावली (राजस्थान) के जंगलों में एक रात भेड़ियों की भेंट चढ़ गया था। साँपों, बिच्छुओं, कनखजूरों, कछुओं, मधुमक्खियों, भिरड़ों आदि से भी मेरा सामना होता रहता है। विकट जगहों पर फ़ोटो लेते समय कई बार कैमरे भी टूटे हैं।

आँखों की रौशनी छीनने के बावजूद भी आप इतनी श्रम, निष्ठा और लगन से लेखन-छायांकन के काम में जुटे हैं। इसके पीछे कौन-सी प्रेरणा है?

महज़ दस फ़ीसदी रौशनी ही मेरी एक आँख में बची हैं। रौशनी का यह बचा-खुचा अंश मुझे नित्य कैमरा उठाने को विवश करता है। काम की यह तड़प मुझे चैन से नहीं बैठने देती क्योंकि इस कार्य से मुझे जो सुख और आनंद मिलता है, उसके आगे कुबेर का ख़ज़ाना नगण्य है। बड़ों ने कहा है- 'काम प्यारा है, चाम प्यारा नहीं।'

आजकल अख़बारों और पत्रिकाओं में कलात्मक चित्रों के लिए कितनी गुंजाइश है?

पहले तमाम अख़बारों में चित्रों के लिए भरपूर जगह रहती थी लेकिन अब अख़बारों में वैसे चित्र नहीं छपते। चित्रों को अधिकाधिक स्थान देने वाली तमाम पत्रिकाएँ कभी की बंद हो गई। मोबाइल में कैमरे आने के बाद कला छायांकन का काम संकट में पड़ गया है। मोबाइल फ़ोटोग्राफ़ी के अनियंत्रित विस्तार ने उत्कृष्ट एवं कलात्मक छायांकन को एक बारगी ही हाशिए पर धकेल दिया है। अब कला मिशन न होकर व्यवसाय बन गई है किन्तु मेरी दृष्टि में कला व्यवसाय की वस्तु नहीं है। दरअसल यह हमारी सांस्कृतिक आवश्यकताओं और आत्मिक सुख के लिए है।

नई पीढ़ी के छायाकारों से आप कितनी उम्मीद रखते हैं?

ज़माना नए लोगों का है और सृजन की सम्भावनाएँ भी अनंत हैं। नई पीढ़ी के युवक-युवतियाँ इस काम में भरपूर रुचि ले रहे हैं और इसे यथाशक्ति आगे बढ़ा रहे हैं। यह अच्छी बात है। ❑



छुट्टी

डीजीएम साहब के केबिन में ही अचानक अविनाश की आँखों के आगे अँधेरा-सा छाने लगा और वह चक्कर खाकर गिर पड़ा। मैंने अविनाश के चेहरे पर और मुँह में पानी डाला लेकिन पानी उसके मुँह में नहीं गया। उसकी गर्दन बाईं ओर झुक गई और आँखें फटी की फटी रह गईं। उस समय बैंक के डॉक्टर कपूर प्रधान कार्यालय में आए हुए थे।

10 मार्च, गुरुवार - आज अविनाश माँ से मिलने की उमंग तथा अपने बच्चों को दादी से मिलवाने की कल्पना में ही उल्लासित हो रहा था।

11 मार्च, शुक्रवार - आज अविनाश का उतरा चेहरा मेरी नज़र से छिपा नहीं रह सका।

"क्यों क्या हुआ? क्या छुट्टी नहीं मिली?"

"नहीं मिली।"

"क्यों नहीं मिली छुट्टी? डीजीएम साहब से बताया माँ बीमार है?" मैंने अविनाश से पूछा था।

"बताया था, लेकिन वह काँइया सुनता कहाँ है? और उलटा उसने मुझे बुरी तरह से डाँटा और अपमानित किया।" अविनाश भीतर-ही-भीतर तिलमिलाने लगा। उसके चेहरे पर दर्द की पतली लकीर खिंच गई।

अपमान से अविनाश का चेहरा काला पड़ गया। डीजीएम साहब का एक-एक शब्द उसकी छाती में नश्तर की भाँति चुभ रहा था लेकिन अविनाश ख़ून का घूँट पी कर रह गया। मेरे चेहरे पर आक्रोश और मन में क्रोध की दुंदुभियाँ बजने लगी थीं। 12 मार्च को दूसरे शनिवार और 13 मार्च को संडे की छुट्टी थी और अविनाश को सिर्फ़ एक दिन 14 मार्च, सोमवार की छुट्टी चाहिए थी और तीन दिन की हेडक्वार्टर छोड़ने की अनुमति चाहिए थी। वैसे अविनाश की छुट्टी स्वीकृत उसके विभाग प्रमुख ने करनी चाहिए थी, लेकिन डीजीएम साहब के सख़्त निर्देश थे कि कोई भी विभाग प्रमुख उनकी अनुमति के बिना किसी भी अधिकारी की छुट्टी स्वीकृत नहीं करेगा।



दीपक गिरकर
ई-मेल : deepakgirkar2016@gmail.com

प्रधान कार्यालय के कर्मचारियों, अधिकारियों में इन डीजीएम साहब की वजह से भय और आक्रोश पनप रहा था। इस घटना से अविनाश का मन व्याकुल होकर विक्षोभ और निराशा में डूब गया। अनजान-सा रिश्ता था अविनाश से मेरा। अविनाश और मैं हैदराबाद में एक सरकारी बैंक के प्रधान कार्यालय में पदस्थ थे। अविनाश ऑडिट विभाग में पिछले पाँच वर्षों से कार्यरत था और मैं एचआर विभाग में पिछले तीन वर्षों से। हमारी दोस्ती केवल बैंक तक ही सीमित नहीं थी। घरों में आना-जाना भी था। हम दोनों अपने-अपने परिवार के साथ बैंक के फ़्लैट्स में ही रहते थे। एक दिन उसने भारी आवाज़ में कहा, "घर से बड़े भाई साहब और पिताजी के कई फ़ोन आ चुके हैं कि एक बार मम्मी से आकर मिल लो, मम्मी तुम्हें बहुत याद कर रही हैं। काम की अधिकता और डीजीएम साहब की वजह से बहुत समय से अपने घर भोपाल जाने का मौक़ा ही नहीं मिला।" ऑडिट विभाग में काम की अधिकता थी और अविनाश के बिना ऑडिट विभाग का काम हो ही नहीं पाता था। अविनाश कड़ी मेहनत, लगन और ईमानदारी से ऑडिट विभाग का हर काम करता था। जिस तन्मयता से वह काम करता था, वो सच में देखने वाली बात थी। अविनाश की प्रतिभा का लोहा पूरा बैंक मानता था। उसने अपने स्नेहिल व्यवहार और अपनी प्रतिभा से सबका मन मोह लिया था। अविनाश को बैंक से छुट्टी बड़ी मुश्किल से मिलती थी। उसे रविवार और अन्य छुट्टियों के दिन भी बैंक में काम निपटाने बैठना पड़ता था। उसका व्यक्तित्व ज़िन्दादिल था लेकिन इधर कुछ दिनों से वक़्त की मार ने उसके चेहरे से हँसी छीन ली थी। काम के अत्यधिक बोझ, मानसिक तनाव, बैंक प्रबंधन का अनावश्यक दबाव और निरंतर चलते अंतर्द्वंद की वजह से अविनाश शारीरिक तथा मानसिक रूप से टूट गया था। लगातार चिन्ता, तनाव उसके स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव डाल रहे थे। रात को 9 बजे पार्किंग से अपार्टमेंट की ओर जाते हुए हम दोनों ख़ामोश चलते रहे। उसकी आँखों में आँसू थे लेकिन वह अपना चेहरा संयत रखे था। उसका मन बुझ-सा गया था।

15 मार्च, मंगलवार - आज अविनाश को उसके पिताजी का फ़ोन आया था, "अवि तुम्हारी मम्मी को अटैक आया है और अभी सिटी हॉस्पिटल के आईसीयू में ज़िन्दगी और मौत से लड़ रही हैं। तुम शीघ्र चले आओ।"

अविनाश तुरंत डीजीएम साहब के केबिन में जाकर अपनी मम्मी की वर्तमान स्थिति से अवगत करता है और चार दिन की छुट्टी के लिए निवेदन करता है।

"देखो अविनाश, तुम्हारी मम्मी अकेली नहीं हैं। उनके पास तुम्हारे पिताजी हैं, तुम्हारा बड़ा भाई है और हॉस्पिटल के डॉक्टर उनका इलाज कर रहे हैं। तुम वहाँ जाकर क्या कर लोगे? मार्च क्लोज़िंग है। तुम्हें किसी भी हालत में छुट्टी नहीं मिलेगी। ऑडिटर्स को कौन सम्भालेगा? अपनी डेस्क पर जाओ और काम करो।"

दो टूक रुखा-सा जवाब देकर डीजीएम साहब फिर अपने काम में लग गए। केबिन से बाहर आते-आते अविनाश के धैर्य का बाँध टूट चुका था, आँसुओं का सैलाब बह चला था। वह अवाक खड़ा रह गया और उसके हाथ से मोबाइल छूट गया। इस घटना ने उसकी मनोस्थिति में भूचाल ला दिया था। मैं उसे कैंटीन में ले गया। उसे समझाया कि घबरा मत। ऊपर वाला सब ठीक करेगा। मैंने

उससे कहा, "तुझे डीजीएम साहब नहीं छोड़ रहे हैं तो तू ऐसा कर भाभी और बच्चों को आज ही ट्रैन या बस से भोपाल भेज दे और तू अप्रैल महीने में ऑडिट होने के बाद चले जाना। तेरे बच्चों की वार्षिक परीक्षा भी हो चुकी है।" उसे मेरी बात ठीक लगी और हमने आज रात की ट्रैन से ही अर्जेंट में टिकट करवाकर उसकी पत्नी और दोनों बच्चों को भोपाल के लिए रवाना करवा दिया।

17 मार्च, गुरुवार – सुबह 10 बजे अविनाश को अपने बड़े भाई गिरीश का रोते-रोते फ़ोन आया, "अवि मम्मी नहीं रहीं। हमें छोड़कर चली गईं।"

अविनाश के विभाग के एक डेस्क अधिकारी तिवारी ने मुझे फ़ोन से सूचित किया, "अविनाश की मम्मी का देहांत हो गया है, तुम शीघ्र हमारे विभाग में चले आओ।"

मैं ऑडिट विभाग में पहुँचकर देखता हूँ कि अविनाश फूट-फूटकर रो रहा है। मैं उसे अपने सीने से लगाकर चुप कराने की कोशिश करता हूँ। मैं ऑडिट विभाग के डिपार्टमेंटल हेड एजीएम सक्सेनाजी को और अविनाश को लेकर डीजीएम साहब के केबिन में जाकर अविनाश की मम्मी का दुःखद समाचार सुनाता हूँ और हम डीजीएम साहब से रिक्वेस्ट करते हैं कि अविनाश को अब तो छुट्टी दे दीजिए।

डीजीएम साहब ने कहा, "मुझे यह जानकर बड़ा दुःख हुआ कि अविनाश की मम्मी का देहांत हुआ है। मैं उन्हें श्रद्धांजलि देता हूँ। होनी को कौन टाल सकता है! अविनाश धैर्य बनाए रखो। अविनाश तुम छोटे हो। तुम्हारे बड़े भाई वहाँ हैं, वे ही सारे क्रियाकर्म करेंगे, वैसे भी तुम्हें क्रियाकर्म करने का अधिकार नहीं है। मार्च क्लोज़िंग निपट जाए और वार्षिक ऑडिट का काम पूरा हो जाए तब तुम छुट्टी लेकर अपने घर भोपाल जा सकते हो।"

डीजीएम साहब के केबिन में ही अचानक अविनाश की आँखों के आगे अँधेरा-सा छाने लगा और वह चक्कर खाकर गिर पड़ा। मैंने अविनाश के चेहरे पर और मुँह में पानी डाला लेकिन पानी उसके मुँह में नहीं गया। उसकी गर्दन बाईं ओर झुक गई और आँखें फटी की फटी रह गईं। उस समय बैंक के डॉक्टर कपूर प्रधान कार्यालय में आए हुए थे। वे आए और अविनाश को चेक करके बोले, "ही इज़ नो मोर।" हम सभी की आँखें फटी की फटी रह गईं। प्रधान कार्यालय में फुसफुसाहट शुरू हो गई थी और कार्यालय का पूरा स्टाफ़ धीरे-धीरे डीजीएम साहब के केबिन के बाहर जमा हो गए था। पूरा प्रधान कार्यालय सन्न रह गया था। किसी को समझ नहीं आ रहा था कि अचानक यह क्या हो गया। बैंक का उच्च प्रबंधन सकते में था। यूनियन लीडर्स लाचार दिख रहे थे। डीजीएम साहब का डर के मारे चेहरा पीला पड़ गया था।

हम लोग अविनाश की बॉडी को लेकर पास के अस्पताल में ले गए वहाँ भी डॉक्टर ने अविनाश की मृत्यु की पुष्टि की। मैंने अविनाश के बड़े भाई को अविनाश की मृत्यु की सूचना दी। हम अविनाश के शव को लेकर पोस्टमार्टम के लिए सिविल हॉस्पिटल ले गए। वहाँ पूरा दिन लग गया। रात को 8 बजे हमें पोस्टमॉर्टम की रिपोर्ट और अविनाश की बॉडी मिली। एक प्राइवेट अस्पताल की एम्बुलेंस में मैं अविनाश के शव के साथ उसके घर भोपाल गया था। अविनाश अपने पैरों से चलकर अपने घर भोपाल नहीं लौटा, वह बक्से में बन्द होकर अपने घर आया था। बिना छुट्टी लिए। ❑



गौरैया

तुमने मैंने देखा था वो घर के
बाहर दालान पर
मिट्टी के ढेर के पास
जलेबी और सखुए के नीचे
वो
अब भी है
कठोर आवरण के भीतर रहती तो है सबके
एक गौरैया आज भी
दिल के भीतर छोटी-सी
चहचहाती जीवन्त करती बचपन के
अहसासों को
इर्द-गिर्द बड़े से लटके घोंसले में
प्यार जन्म देती!
अब विलुप्त होती जा रही
कलयुग के बड़े-बड़े पैर
गाँव को शहर बनाते
और दिल के दरवाज़े पर चाहकर भी
कहाँ आ पाती है बाहर!
वैसे हम चाहें तो रुक जाएगी वो
खोने से।



निवेदिता झा
ई-मेल : niveditaart@gmail.com

प्रेम

याद है तुम्हें
उस साल
सारे पत्ते फिर से हरे हो गए थे
जब तुमने स्पर्श किया था
मारोमार के उस जीर्ण पेड़ को

तुम लापरवाह बढ़ रहे थे
जब बिछी थी बारूद की परतें
उस लाल मिट्टी के ज़मीन पर
जंगल में रहने वाले कोयले और मिट्टी के
भी तो
होते हैं शायद सगे

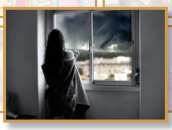
तुमने जब कुछ नहीं कहा
ढेर सारे स्वर गूँज उठे मेरे कानों में
तुमने जब आँखें बंद की
मैंने समेट लिया समय
कुछ महीनों में हमने लिख दिया मानो युग
उम्र बीत गई
सफ़ेद बालों की चमक और गहरी हो गई
तुम आकर भी नहीं आए
चाहे आए कितने मौसम

जब देखा पहाड़
वहाँ के छाँव में तुम
पाषाण
समुद्र की लहरें तुम्हारी बातों की तरह चिढ़ाती
निरंतर अहसास जीवित रखने की ताक़त नहीं
मन आज भी वही कुलवधू की तरह
काया थकी-सी मगर

ज़िन्दगी सबको वजह देती है
तुम और मैं शायद बेवजह ही मिलेंगे कभी

जब जंगल में शायद मेघा बरसे कि
सूर्य उतर कर आए धरती के घर...। ❑

कहानी



सलोनी की हथेली अपनी हथेली में लेकर रमा ने उसकी शादी टूटने का कारण जानना चाहा है। सलोनी सकुचा गई। उसके भीतर की उदासी आँखों में झलक उठी। रमा के बार-बार आग्रह पर सलोनी ने बस इतना कहा कि क्या याद करूँ उन दिनों को? बस नहीं होना था विवाह।

हिचकी

आज भी इतवारीलाल नहीं आया? महीने का आख़िरी इतवार। लगातार तीन इतवार, उसकी अनुपस्थिति काका को अखरने लगी है। पहली मर्तबा, इतवारीलाल बताकर नहीं गया है कि वह कहाँ गया है? और कब लौटकर शहर आएगा? यही बात काका की नाराज़गी का सबब बनी हुई है। वे सोच में पड़ गए कि इतवारीलाल इतना लापरवाह तो कभी नहीं रहा है कि बिना बताए कहीं चला जाए? मगर....।

काका ने सुबह तीन बार उसके मोबाइल पर कॉल किया, रिंग नहीं गई, एक बार भी। 'नाट रिचेबल' और 'आउट ऑफ़ रेंज' सुनकर काका की उलझन बढ़ गई। उन्हें झुँझलाहट हुई और वे बोल उठे, "सिग्नल न मिलने की समस्या जब शहरी क्षेत्र में है तब गाँव की क्या बात? यह मोबाइल भी ऐन मौक़े पर दग़ा दे गया है। काका के मन में एक खटका लग गया - इतवारी बिना बताए चला गया। एक फ़ोन भी नहीं किया उसने। वास्तव में इतवारी काका का बहुत भरोसेमंद आदमी है। मन को समझाने की हर कोशिश में काका असफल हो गए हैं। मन की भड़ास काकी के सम्मुख निकालकर काका अपना जी कुछ हल्का करने लगे थे।

बग़ीचे के काम में देरी होने से काका का चिन्तित होना स्वाभाविक है। उनका जी नहीं माना और उन्होंने एक बार फिर, इतवारीलाल को मोबाइल पर कॉल किया,



आनन्दप्रकाश त्रिपाठी
ई-मेल : aptripathihindi@gmail.com

इस उम्मीद से कि शायद कॉल रिसीव हो जाए और समाचार मिले कि वह सकुशल है और शहर जल्दी लौट आएगा? लेकिन इस बार उसका मोबाइल 'स्विच्ड ऑफ़' बताने लगा था। काका को लगा, हो सकता है कि इस वक़्त गाँव में बिजली न हो और उसका मोबाइल डिस्चार्ज हो गया हो। वैसे भी वह कहाँ जा सकता है? अपने गाँव या किसी रिश्तेदार के घर!

उस दिन शाम गहराने लगी थी। पूरा दिन ख़ाली बीत गया था। काका बग़ीचे में घूम-फिरकर घर आ गए थे। इतवारीलाल का यूँ अचानक बिना बताए चला जाना उन्हें बहुत बुरा लगा था। उनका मन आहत हुआ था। बहुत यक़ीन करते थे वे इतवारी पर। अकस्मात् काका को ध्यान आया कि कुछ दिन पूर्व इतवारी ने बताया था कि उसके बाबूजी बीमार हैं। उन्हें डेंगू हो गया है।

इस बीच गाँव में शहर की अपेक्षा अधिक तेज़ी से डेंगू फैलने की ख़बरें आने लगी थीं। इतवारी के बाबूजी का इलाज गाँव के डॉक्टर के वश में नहीं रह गया था। उसे हर हाल में अपने बाबूजी को शहर ले आना पड़ेगा। शहर में इलाज महँगा है। डॉक्टर की फ़ीस और दवाओं के ख़र्च के लिए इतवारीलाल की जेब तंग पड़ जाएगी। .... यह सोच-विचार करते हुए काका को पुख़्ता यक़ीन हो गया है कि इतवारी अपने गाँव गया है। ज़रूर उसके बाबूजी की तबीयत बिगड़ गई होगी। तभी तो दो दिन पहले उसे कई बार हिचकी आई थी। पिता अवश्य उसे याद करते रहे होंगे। ऐसी ही बातों से काका अपने मन को समझाए हुए थे।

अगले दिन भोर में काकी उठीं और उन्होंने देखा कि काका उनसे पहले ही उठ गए हैं। वे बग़ीचे में उगे ख़र-पतवार निकालने में जुटे हुए हैं। थोड़ी-थोड़ी देर पर मोबाइल जेब से निकालकर वे देखने लगते हैं कि कहीं इतवारीलाल का मिस्ड काल न पड़ा हो। वे निराश होते हैं और बड़बड़ा उठते हैं, अरे इतवारी ने तो ग़ज़ब का धोखा दिया। एक बार भी ज़रूरी नहीं समझा कि फ़ोन लगा ले। ऐंठोर भी नहीं है वह। फिर ऐसा क्यों किया उसने? सही कहते हैं लोग, नौकर-चाकर को ज़्यादा सिर पर नहीं चढ़ाना चाहिए।

नाराज़गी ज़ाहिर करते हुए काका की भृकुटी तन जाती थी।

बग़ीचे में काम करते हुए काका को देखकर काकी वहाँ पर बने चबूतरे पर बैठ गईं। काका की बातें मन-ही-मन गुनकर वे बोलीं, "भिनसारे से बग़ीचे में इतवारीलाल के बारे में अकेले में बोलते जा रहे हैं। न ज़ुबान थकी और न ही शरीर, काम करने की धुन सवार होने पर तुम्हें एक कप चाय पीने की भी सुधि नहीं रह गई। काकी की ये बातें सुनकर काका ने कहा कि मन मुताबिक काम समय पर न होने पर मुझे उलझन होती है। काकी की ओर देखकर, "तुमने इतवारीलाल को ढील दे रखी है। हम दोनों का सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार पाकर वह थोड़ा लापरवाह हो गया है। पहले जैसा वह नहीं रह गया है।"

काकी चुपचाप काका की बातें सुनती रहीं। काकी बोलीं, "अब कौन मुँह लगे मर्दों के।" पास में बैठी सलोनी की ओर देखकर वे बोली थीं। अब सलोनी भला क्या कहती?

काकी ने ही याद दिलाया कि आज सलोनी को देखने के लिए भोपाल से लड़केवाले आने वाले हैं। उनके स्वागत की तैयारी करनी है। काकी के याद दिलाने पर काका बग़ीचे का काम छोड़कर बाहर आ गए। नल पर आकर हाथ-पाँव धोए। काकी ने सलोनी को आवाज़ दी, चाय बना लो। काका नहा लें, पूजा कर लें तब तक कुछ नाश्ता बना लो, तुम्हारे काका को मार्केट जाना है। सलोनी रसोई में जाकर अपने काम में लग गई।

पिछले तीन सालों से इतवारीलाल के सहयोग की ज़रूरत काका को इस उम्र में पड़ने लगी है। जवानी कब तक ज़ोर मारती! फिर भी, काका अपने हमउम्र वालों में जवान लगते हैं। काका जैसे लोगों को देखकर ही यह बात कही गई है- 'साठा तब पाठा।'

काका का बग़ीचा फूल-पौधों का सुन्दर और भव्य गुलदस्ता बन जाता है। उनके हित-मित्र उनके गार्डेन की बहुत तारीफ़ करते हैं। तारीफ़ सुनकर काका का उत्साह कई गुना बढ़ जाता है। पूरी कॉलोनी में अकेले काका का बग़ीचा ऐसा सजा-सँवरा रहता है कि हर आगंतुक के आकर्षण का केन्द्र बन जाता है। काका ने तरह-तरह के फूल-पौधों और क्रोटन से पूरा बग़ीचा सजा दिया है। बग़ीचे में अमरूद, अनार, नींबू, लीची, आम, कटहल के पेड़ भी लगे हुए हैं। फल वाले वृक्ष उनकी पहली पसन्द हैं। काका का यह शौक बहुत पुराना है, बचपन का है। अपने जीवन में उन्होंने यही एक शौक पाल रखा है।

काका अपने घर से निकलकर मुख्य सड़क के बाईं ओर की पुलिया पर बैठे हुए थे। उनके साथ मोहल्ले के और भी वरिष्ठ नागरिक बैठे हुए थे। बात निकल आई घरेलू कामकाजी नौकरों की। काका बड़ी शान से इतवारीलाल का ज़िक्र कर बैठे। सबके सामने उसका पूरा शेजरा बाँचने लगे। पहले-पहल उन्होंने इतवारीलाल के नाम पर फ़ोकस किया। काका ने बताया, इतवारीलाल का असली नाम यह नहीं है। उसके माँ-बाप का दिया हुआ नाम है- श्याम मनोहर लाल। मनोहर लाल पिता का नाम है। श्याम के नाम के साथ पिता का नाम कब जुड़ गया, उसे भी पता नहीं है। इतवारीलाल नाम काका ने बरसों पहले ही रख दिया था। फिर यही नाम पुकारा जाने लगा। काका के बग़ीचे में वह सिर्फ़ इतवार को काम करने आता है। बाक़ी दिनों में वह सरकारी ऑफ़िस में माली के रूप में काम करता है। उसे केवल इतवार को फ़ुर्सत मिलती है। इस दिन वह काका की सेवा में हाज़िर रहता है। काका ने इतवार को आने के नाते श्याम मनोहरलाल का नया नाम इतवारी लाल रख दिया है। उसने कभी कोई आपत्ति नहीं जताई। पिछले पाँच सालों से श्याम मनोहरलाल मुरली काका के लिए इतवारी लाल हो गया है।

बग़ीचे में अकेले काम करने में काका का मन इतवारी के बिना नहीं लगता है। उनका मार्गदर्शन इतवारी के काम को आसान बना देता है। काका का बाग़वानी का अनुभव बेशकीमती है। फूलों की प्रजातियाँ और उनके उगाने का मौसम, बीज संरक्षण, खाद पानी, रोग की दवा आदि की जानकारी के कारण काका किसी प्रशिक्षित माली से कमतर नहीं हैं। फूल-पौधे लगाने के शौकीन मोहल्ले के लोग उनसे जानकारी लेने आया करते हैं।

हर इतवार, इतवारीलाल का ही दिन है। काका इसी नाम से इस दिन को जानते हैं। इतवार के दिन, बग़ीचे में ही बीतता है काका का सारा समय। जब ऑफ़िस जाना होता है तब वह बग़ीचे में पाँव नहीं रख पाते हैं लेकिन आज के दिन फ़ुर्सत से फूल-पौधों के बीच में रहना वे अपना ख़ुशनसीबी समझते हैं। एकदम सुबह काका ने पूरे बग़ीचे का सूक्ष्म निरीक्षण किया, हर पौधे के पीले पत्तों और सूखे फूलों को डाल से अलग किया। बाल्टी में पानी लेकर फूल-पत्तियों की धुलाई की। जिन पत्तियों पर धूल की परत चढ़ी हुई थी, उन्हें अपनी उँगलियों की पोरों से धोया। मानो काका एक-एक पौधों को दुलार रहे हों, उनका हाल-चाल पूछ रहे हों। यह उनके व्यवहार में परिलक्षित हो रहा था। आज बहुत देर तक काका बग़ीचे में रुक गए हैं। वे पेड़-पौधों के कष्ट का निवारण करके ही लौटेंगे घर में। यह सच है कि पेड़-पौधों को वे अपने सगे जैसा मानते हैं। बड़ा ख़्याल रखते हैं उनका। उन्हें पता है कि इनमें भी जान होती है। घास-फूस खुर्पी से निकाल कर ही काका आज दम लेंगे। खुर्पी उनके हाथों में है। बच्चे के खिलौने की तरह लगती है। उन्हें मज़ा आता है खुर्पी चलाने में। निराई-गुड़ाई में उन्हें पूरी महारत हासिल है। कुदाल तो ऐसी चलाते हैं जैसे क्रिकेट का बल्ला हो। साठ की उम्र पार कर लेने पर भी एक नौजवान की तरह मिट्टी में कुदाल और फावड़ा चला लेते हैं। बचपन का यह गुण आज भी क़ायम है। शौकिया ही सही, खेती के हर रंग-ढंग से वाक़िफ़ हैं काका।

इतवारी के प्रति उनके मन से ग़ुस्सा अभी पूरा उतरा नहीं है। बीच-बीच में वे बड़बड़ा उठते हैं। सिज़नल फूलों के लगाने का समय निकल जाएगा, यह सोचकर उनका धैर्य टूटने लगता है। लग रहा है कि आज काका अपनी नाराज़गी जल्दी विराम देने के मूड में नहीं हैं।

इसी तनाव में काका बहुत देर से सलोनी को आवाज़ भी लगा रहे हैं- सलोनी! सलोनी! पर सलोनी है कि सुधियों की न जाने कौन-सी सतखंडी हवेली पर चढ़ गई है। वहाँ से दो-चार पल में उतरना उसके लिए संभव नहीं हुआ। उसके लिए काका की पुकार आउट ऑफ़ एरिया थी। नॉट रिचेबल ...सलोनी को नहीं सुनाई दी। काका ने अपनी आवाज़ का वाल्यूम थोड़ा बढ़ा दिया था। सलोनी! बेटी सलोनी! कहाँ हो बेटी? (थोड़ा पास आकर) ...देखा सलोनी को काका ने ध्यान से। काका बोले, "बहुत हिचकी ले रही है तू। आज कुछ

खोई-खोई सी है। तबीयत तो ठीक है न तेरी? कोई याद कर रहा है तुझे।" अच्छा, जा एक गिलास पानी ला दे। यह कहते हुए काका सलोनी के पास तक आ गए और वहाँ रखी लकड़ी की कुर्सी पर धम्म से बैठ गए। अब देर तक काम करने की उम्र रही नहीं काका की। वह तो ज़िद है उनकी, जो बग़ीचे के काम में जुटे रहते हैं।

काका की तेज़ मर्दराज आवाज़ - ओ सलोनी! सलोनी! सलोनी के कान के कोमल पर्दे को झनझना बैठी है।

वह सिटपिटा कर बोली, "हाँ काका, ले आती हूँ पानी।" वह लपककर रसोईघर में गई, आरओ से स्टील के एक गिलास में पानी भरा और काका के हाथ में थमा दिया। काका पानी पीकर फिर बग़ीचे में चले गए।

काका के लिए सलोनी अपनी सगी बेटी से बढ़कर है। अपनी बेटी जैसा पाला-पोसा है उसे। माँ के चले जाने पर सलोनी का एकमात्र आश्रय काका-काकी का ही मिला। उसके पिता काका के गाँव वाले खेत में काम किया करते थे। हलवाहा था वह। बहुत मेहनती था, नाम भुवन यानी भुवनेश्वर। काका के लिए भुवन था। वह गाँव के नए लड़कों के बहकावे में आकर दिल्ली चला गया। वहाँ उसे मज़दूरी का काम मिला। कोरोना की चपेट में वह कब आ गया, उसे पता ही नहीं चला। बीमारी लिए वह भागकर गाँव आ गया लेकिन पर्याप्त धनाभाव और सही चिकित्सा के अभाव में भुवन को बचाया नहीं जा सका था। सलोनी की माँ भी उनके संग चल बसी। सलोनी को लेकर काका शहर आ गए। थोड़े से इलाज से सलोनी बचा ली गई। अब वह सयानी हो गई है, पढ़-लिख गई है और समझदार हो गई है।

काका ने हिचकी के बारे में जो कुछ कहा था, उसका मर्म सलोनी समझ गई थी पर काका की बात का कोई समीचीन उत्तर नहीं था उसके पास। बहुत कठिन प्रश्न था सलोनी के सम्मुख। काका ने पूछा, "क्या अधिक खा लिया है? पी ले पानी एक गिलास, हिचकी-विचकी सब ग़ायब हो जाएगी।" काका की इस बात को मान लिया सलोनी ने। वह बोली, "अच्छी बात है काका। "रसोईघर में जाकर उसने एक नहीं, दो गिलास पानी पेट में उड़ेल लिया पर हिचकियों की सेहत पर कोई फ़र्क नहीं पड़ा। वह रह-रहकर आती रही और सलोनी के मन को भयभीत करती रही।

सलोनी ने हिचकी के बारे में अपनी माँ से सुन रखा था कि कभी-कभी बेमन से अधिक खाना खा लेने से भी हिचकियाँ आती हैं पर, आज उसने नाश्ते में सिर्फ़ एक पराठा खाया है। उसे माँ की यह बात भी याद आई कि कोई जब बहुत दिल से किसी को याद करता है तब भी हिचकी आती है और कई बार तो माँ का यह कथन उसने सच होते हुए देखा भी है। माँ को जब भी हिचकियाँ आती थीं तब वह घर-परिवार के उस सदस्य का नाम लेती थी जो उसका अतिप्रिय होता था। हिचकियाँ सचमुच ग़ायब हो जाती थीं। यह देख और सुनकर बहुत कम लोगों को

विश्वास होता था पर माँ का अनुभव तो यही कहता था। सलोनी को लगा कि हो न हो उसे कोई याद कर रहा है। उसे कौन याद कर रहा है इतनी देर से? इस रहस्य की थाह लगाना सहज संभव नहीं है। घर-परिवार के लोग और कितने दोस्त हैं, वह किस-किस का नाम ले। सलोनी सोचने लगी थी कि ये हिचकियाँ क्यों आती हैं? क्या सचमुच कोई किसी को स्मरण करता है? इसका पक्का सबूत ढूँढना ज़रूरी है। सच की तह तक पहुँचना होगा। सलोनी ने झट से टेबल पर रखा अपना मोबाइल हाथ में लिया और फट से गूगल बाबा के सान्निध्य में पहुँच गई। विश्व गुरु गूगल बाबा के ज्ञान के आगे सभी नतमस्तक हैं। विज्ञान का अद्‌भुत वरदान है। इनके ज्ञान भंडार का क्या कहना है? पल भर में हिचकियों के बारे में तमाम वैज्ञानिक जानकारियाँ सलोनी को उपलब्ध हो गईं।

मसलन हिचकी का सम्बन्ध पेट से सम्बन्धित समस्या से जुड़ा हुआ है। पेट और फेफड़े के बीच स्थिति डायाफ्राम और पसलियों की माँसपेशियों में संकुचन हिचकी आने की प्रमुख वजह है। पाचन या श्वासनली में अधिक हलचल से व्यक्ति को हिचकी आती है। जल्दी खाने से भी हिचकी आती है। न्यूरोसर्जन की दृष्टि में हिचकी आना सामान्य बात है किन्तु, प्रायः और लगातार अधिक समय तक हिचकी बनी रहे तो चिन्ता का विषय है।

इसी उधेड़बुन में सलोनी काफ़ी देर तक फँसी रही। उस समय तक दिन काफ़ी चढ़ आया था। उसे समय का बोध ही न रहा? नामुराद, ये हिचकियाँ कम नहीं हो रही हैं। सलोनी का मन हिचकोले खाने लगा था। माँ के अनुभव को सच माने या विज्ञान की बातें। पहली बार हिचकियों से सामना हुआ था। किसे नकारे–माँ का अनुभव या विज्ञान का तथ्य। अनुभव का जीवन में बहुत महत्व है। कबीर आदि कवि तो अनभूति को ही सत्य मानते हैं। विज्ञान अपनी तरह से हिचकी के बारे में बात करता है।

एक विचित्र अनिर्णय की स्थिति में सलोनी उलझी हुई थी। उसने सोचा, चलो माँ के अनुभव को ही आज परख लिया जाए। 'हाथ कँगन को आरसी क्या? पढ़े-लिखे को फ़ारसी क्या।' लेकिन सबसे बड़ी समस्या उसके सम्मुख यह है कि वह किसका नाम पहले ले कि बंद हो जाएँ ये हिचकियाँ। आज माँ के अनुभव की आज़माइश का क्षण आ गया है।

बहुत कठिन परीक्षा थी सलोनी के लिए। माँ, पिता, भाई, बहन...कोई भी तो नहीं है उसका। फिर कौन उसे इतना याद कर रहा है? आख़िर किसका नाम ले कि हिचकी बंद हो जाए! तभी सलोनी के ध्यान में रवि और दिव्या का नाम एक साथ उभर आया। स्कूली दिनों के ख़ास साथी। रवि से तो प्यार भी हो गया था सलोनी का। आगे की पढ़ाई के लिए काका के पास चली आई। प्रेम की वह बेल मुरझा गई। दिव्या भी उसकी जिगरी दोस्त थी। सलोनी के मन ने कहा, पहले रवि का नाम ले पर हिचकियों

ने पीछा नहीं छोड़ा। दूसरा विकल्प दिव्या का था। सलोनी को विश्वास हुआ कि हो न हो दिव्या ही याद कर रही है। सलोनी ने मन में दिव्या का भी नाम लिया, पर हिचकी नहीं रुकी।

इसी बीच फिर काका ने सलोनी को आवाज़ दी, "अरी बिटिया! एक कप चाय बना दे।" सलोनी को काका की आवाज़ नहीं सुनाई दी। काका ने फिर पुकारा, "सलोनी बेटा, कहाँ हो? मेरा चाय और नाश्ता का समय हो गया है। बेटी! अपनी काकी को दवा पिला देना। मैं काम निबटा लूँ, साथ में नाश्ता करेंगे। आलू के पराठे बना लेना। नमक ज़्यादा न होने पाए।"

काका की पुकार सुनकर, हड़बड़ी में सलोनी के पाँव लड़खड़ा गए। अपने को सम्भालती हुई वह बोली, "हाँ काका, चाय लाती हूँ।"

'काका क्या कहेंगे, अरे तेरी हिचकियाँ बंद नहीं हुईं। आधा घंटा से ऊपर हो गया।' यही सोचती हुई सलोनी किचन में चाय बनाने चली गई। तभी डोरबेल घनघना उठी। सलोनी ने सोचा इतनी सुबह कौन आया होगा? वह गैस चूल्हे पर चाय का पानी चढ़ा चुकी थी। गैस का नॉब धीमा कर किचन से बाहर तेज़ी से आई और घर का बाहरी दरवाज़ा खोला, उसने देखा कि दरवाज़े पर एक युवती खड़ी है, एक छोटे बच्चे के साथ। उसने आत्मीयता से सलोनी की ओर देखकर कहा, "पहचाना मुझे। तेरी बचपन की ख़ास सहेली रमा।" सलोनी को दो चार पल लगा होगा रमा को पहचानने में। "अरे तुम, रमा! ओ रमा!" दोनों सहेलियाँ एक-दूसरे के गले लिपट गईं। "तभी तो मैं कहूँ कि आज मुझे कौन याद कर रहा है।" रमा का हाथ पकड़ कर सलोनी घर के अंदर ले गई। सोफ़े पर बिठाया। बच्चे को देखकर सलोनी ने कहा, "कितना प्यारा बच्चा है। तुम बच्चे के साथ अकेले आई हो और मेरे शहर में ...कोई ख़ास बात? सब कुछ ठीक है न?" रमा बोली, "हाँ, सब ठीक है। तुम अपनी कहो, कैसी हो? अभी शादी भी नहीं किया?" रमा बात को और आगे बढ़ाती, सलोनी चाय-नाश्ता लेने किचन में चली गई। थोड़ी देर बाद वह चाय-नाश्ता लेकर लौटी। एक कप चाय काका को भी दे आई।

रमा की बात अधूरी रह गई थी। रमा के कुछ कहने के पहले ही सलोनी शादी की बात पर बोली, "मेरी शादी ...एक लम्बी कथा है, फिर कभी। अभी पीएच.डी. पूरा कर रही हूँ। तीन-चार महीने और लगेंगे। स्कॉलरशिप भी पूरी होने वाली है।"

रमा बोली, "वाह, बहुत ख़ूब, तूने तो बाज़ी मार ली। मैं तो शादी करके फँस गई। सलोनी। इतनी हड़बड़ी क्या थी तुझे? तू तो टॉपर थी क्लास की।"

"अरे यार, अब क्या कहूँ, माँ शादी के लिए पीछे पड़ गई। कहती थी, कमासुत लड़का है, जल्दी नहीं मिलेगा और तेरे पिता भी रिटायर होने वाले हैं।" माँ ने ऐसा दबाव बनाया कि मैं ना नहीं कह सकी। माँ ने ही बताया था कि लड़के के माँ-बाप दान-दहेज

में विश्वास नहीं करते हैं। तो माँ को लगा कि ऐसे सुलझे विचारों वाला परिवार फिर नहीं मिलेगा। अरे रमा, तेरा नसीब जगा है। हाँ बोल बेटा। और माँ की बातों की सच्चाई जानकर मैंने शादी के लिए, कह दी। "सलोनी, कैसे हैं तेरे पति?" सकुचाते हुए रमा बोली, "अच्छे हैं, समझदार हैं, हमारी क़द्र करते हैं।"

"सलोनी, बहुत भाग्यशाली है तू। ज़िन्दगी बन गई तेरी। यह प्यारी-सी बेटी।" बेटी को दुलारते हुए सलोनी ने उसे गोद में दुबका लिया।

सलोनी की हथेली अपनी हथेली में लेकर रमा ने उसकी शादी न होने का कारण जानना चाहा है। सलोनी सकुचा गई। उसके भीतर की उदासी आँखों में झलक उठी। रमा के बार-बार आग्रह पर सलोनी ने बस इतना कहा कि क्या याद करूँ उन दिनों को? बस नहीं होना था विवाह।

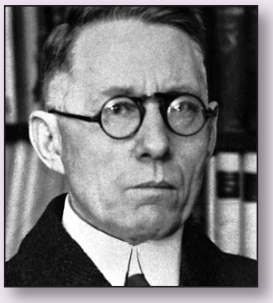
छोड़ो इस बात को और अपना सुना, मौज-मस्ती के दिन हैं तेरे।

"रमा, अरे नहीं यार, मौज-मस्ती के दिन हवा हुए। अब तो सिर्फ़ ज़िम्मेदारी है, घर-गृहस्थी का जंजाल। पढ़ने-लिखने वाले कॉलेज के उन दिनों का क्या कहना। सिर्फ़ यादें बची हैं। ख़ैर छोड़ो...।"

"तुम आई मुझसे मिलने, अहो भाग्य मेरे। सपने में भी नहीं सोचा था कि तुमसे भेंट होगी। मेरा पता सहेजकर रखा था तुमने, यह बड़ी बात है।" रमा से मिलते ही सलोनी की हिचकियाँ पल में न जाने कब, छू मंतर हो गईं। सलोनी ने रमा को बताया कि आज सुबह से ही हिचकी पीछा नहीं छोड़ रही थी। तुम्हारे आने पर और तुम्हारा नाम ज़ुबाँ पर आते ही हिचकी फुर्र हो गई।

उसी समय बेडरूम में रखा काका का मोबाइल घनघना उठा। सलोनी ने जाकर मोबाइल देखा। अरे! इतवारीलालजी का कॉल। फ़ौरन से पेश्तर उसने मोबाइल लिया और काका के पास बग़ीचे में पहुँची, काका के हाथ में मोबाइल देने को हुई, तब तक मोबाइल की रिंगटोन बंद हो गई। काका ने मिस्डकाल में इतवारीलाल का नाम देखा। उन्हें अच्छा लगा कि चलो फ़ोन तो किया उसने। इतवारीलाल ने पुनः काका को मोबाइल लगाया, काका के 'हेलो' कहते ही इतवारी ने अपनी ओर से पहल की। सुबह पारे की तरह चढ़ा काका का ग़ुस्सा एकाएक पानी की तरह उतर आया था। ख़ुशी की एक लहर उनके चेहरे पर ऐसे फैल गई थी जैसे सूखती फ़सल पर पानी की बूँदें पड़ी हों। दो मिनट बात हुई उन दोनों की, काका का ग़ुस्सा और उलझनें बालू पर खिंची लकीरों की तरह मिट गईं। ज़ाहिर है कि इतवारी ने अपने लौटने की बात काका को बता दी है।

काका ने सलोनी को आवाज़ दी, "अरे नाश्ता ले आओ। देर हो रही है।" नाश्ता करके काका दोगुने जोश से बग़ीचे के काम में जुट गए थे। सूरज एक हाथ और ऊपर आकाश में चढ़ आया था। गुनगुनी धूप में काका की देह खिल गई थी। ❑



जोहान्स विल्हेम जेन्सेन

साहित्य में नोबेल पुरस्कार प्राप्त
डेनिस कवि, उपन्यासकार,
निबंधकार एवं पत्रकार

मेम्फ़िस स्टेशन पर

जोहान्स विल्हेम जेन्सेन का जन्म उत्तरी जटलैण्ड के हिम्मरफ़ैंड शहर (डेनमार्क) में 20 जनवरी, 1873 को एक पशु चिकित्सक के घर हुआ। मैट्रिक पास करने के बाद डॉक्टरी की पढ़ाई के लिए उन्हें कोपेनहेगन भेजा गया। सन् 1893 में डॉक्टरी की पढ़ाई शुरू की लेकिन आर्थिक तंगी के चलते उन्होंने 1897 में पढ़ाई छोड़ दी और पत्रकारिता तथा साहित्य का क्षेत्र चुन लिया। हालाँकि 1895 से ही उन्होंने कहानियाँ लिखना शुरू कर दिया था लेकिन 1898 में स्पेन-अमरीका युद्ध के दौरान युद्ध संवाददाता के रूप में पेरिस की विश्व प्रदर्शनी में भाग लिया, जहाँ के नए वातावरण का उनके जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा। जेन्सेन की औपन्यासिक कृतियों में सर्वप्रथम 'कोंगैन्स फ़ाल्ड' प्रकाशित हुई, जिसका 1933 में अंग्रेज़ी अनुवाद छपा, जिसे प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यास के रूप में जाना गया। इसमें पुराने कृषक जीवन और उसके विरोधी दृष्टिकोण का सुन्दर वर्णन था। उन्होंने कुल मिलाकर 70 पुस्तकें एवं अनेक लेख लिखे। उनकी प्रसिद्ध कृतियों में 'स्टोरीज़ ऑफ़ हिमरलैण्ड', 'कोंगैन्स फ़ाल्ड', 'डेन लैंग रेजसे', 'द लॉन्ग जर्नी', 'जुलेट',

अनुवाद
बंशीधर तातेड़



ई-मेल : taterdrbd@gmail.com

'मिथ', 'डेन्स केयर', 'डेम वर्डेज़', 'मैडम डियोरा' आदि मुख्य हैं। वर्ष 1944 में उन्हें साहित्य के नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया। 25 नवम्बर 1950 को उन्होंने कोपेनहेगन-डेनमार्क में अंतिम साँस ली।

मेम्फ़िस स्टेशन पर

आधा जागते हुए और आधा ऊँघते हुए
एक नीरस हक़ीक़त से प्रभावित,
परन्तु फिर भी खोया हुआ
डेनेडियन सपनों के भीतरी समुद्री कोहरे में
मैं दाँत किटकिटाता हुआ खड़ा हूँ
मेम्फ़िस स्टेशन, टेनेसी पर
बादल का पानी बरस गया
रात बहुत सुनसान और बुझी हुई है
एक संवेदनहीन, अंधकारमय ऊर्जा के साथ
हर चीज़ चिपचिपी और अभेद्य है,
गाड़ी यहाँ घण्टे-घण्टे प्रतीक्षा क्यों करती रहती है?
मेरा भाग्य यहाँ क्यों रुका हुआ है?
क्या मुझे बारिश और दिमाग़ सुन्न होने से भागना चाहिए?
डेनमार्क, भारत और जापान में
सिर्फ़ मेम्फ़िस में वर्षा होने और सड़ने के लिए
टेनेसी, यू.एस.ए.?
और अब दिन निकलने वाला है,
निराशाजनक रूप में प्रकाश
ठण्डी पटरियाँ और सारी काली मिट्टी,
चॉकलेट वेंडिंग मशीन के साथ प्रतीक्षालय
संतरे के छिलके, सिगरेट के टुकड़े, जली हुई माचिस,
दिन का समय उफनती नालियों के साथ बीतता है
और वर्षा का एक शाश्वत ग्रिड
मैं स्वर्ग से धरती तक वर्षा कहता हूँ
संसार कितना बहरा और अपरिवर्तनीय है,
इसको बनाने वाला कितना प्रतिभाहीन है!
और मैं मेरा बक़ाया क्यों चुकाता रहूँ?
अस्तित्व के इस सर्वसाधारण जल उपचार के लिए!
शान्त! देखिए कैसा है इंजन,
यह विशाल यन्त्र, उबलता हुआ शान्ति से खड़ा है
अपने को धुएँ में लपेटना-यह धैर्यवान है
फिर आगे बढ़ें और मेम्फ़िस में रहें
आख़िरकार, आपका जीवन और कुछ नहीं है
एक उमस भरी वर्षा की तुलना में, यह सदैव था
आपके घूमने में बहुत देर हो रही है
किसी-न-किसी दयनीय प्रतीक्षालय या अन्य में-
मेम्फ़िस, टेनेंसी में रहें
इन पोस्टर-चिल्लाने वाले घरों में से एक के अंदर
ख़ुशी आपकी प्रतीक्षा कर रही है,
ख़ुशी अगर, आप अपनी अधीरता को समाप्त कर सकें-
यहाँ भी, एक युवा नौकरानी सोती है
उसके कान उसके बालों से दबे हुए थे,
वह तुम से मिलने आएगी
सड़क पर एक अच्छा दिन, इत्र की लहर

की तरह
ऐसी नज़र से जैसे वह तुम्हें जानती हो
क्या यह वसंत नहीं है?
क्या वर्षा ज़ोर से नहीं होती?
क्या, यह बड़बड़ाहट की तरह नहीं लगता,
एक लम्बी मौन...मुँह से मुँह
वर्षा और धरती के बीच?

संक्रान्ति गीत

हमारा सूर्य अब ठण्डा हो गया है
हम सर्दी की गिरफ़्त में हैं
दिन ढल रहे हैं,
अब, सबसे गहरी रात बीत चुकी है,
हमारी आशा धवल जलती है-
हाँ, आशा धवल जलती है
फ़िलहाल सूर्य ठीक हो जाएगा,
अब शीघ्र लौटेगी रौशनी,
दिन फिर से फिरने लगे हैं
सुन्दर देवदार का पेड़ हरा
बेटोकेंस समर का पर्दा/स्क्रीन
जंगल का प्रभावशाली
क्रिसमस मोमबत्ती की रौशनी में
सितारे-मेज़बानों की तरह उज्ज्वल/धवल
हाँ, सितारे-मेज़बान उज्ज्वल/धवल
सूर्य का कमाल देखते ही बनता है
और सभी पीले फूल-सूर्य जो अब ऊँघ रहे हैं
देवदार के पेड़ की तीखी गंध
ग्रीष्म ऋतु बिताने की हवा देती है
और हर एक नव-आगंतुक
ठण्डा डेनिस वर्ष-सभी झूले,
एक अँगूठी में नृत्य
हाँ, एक अँगूठी में
एक शाश्वत झरने के चहुँओर
आइए, सभी डेनमार्क की
प्यारी गर्मियों के बारे में गाएँ। ❑

प्रकाशन विभाग के विक्रय केन्द्र			
नई दिल्ली	पुस्तक दीर्घा, सूचना भवन, सीजीओ कॉम्प्लेक्स, लोधी रोड	110003	011-24367260
नवी मुंबई	701, सी-विंग, सातवीं मंजिल, केंद्रीय सदन, बेलापुर	400614	022-27570686
कोलकाता	8, एसप्लानेड ईस्ट	700069	033-22488030
चेन्नई	'ए विंग, राजाजी भवन, बसंत नगर	600090	044-24917673
तिरुअनंतपुरम	प्रेस रोड, नई गवर्नमेंट प्रेस के निकट	695001	0471-2330650
हैदराबाद	कमरा सं- 204, दूसरा तल, सीजीओ टावर, कवादिगुड़ा सिकंदराबाद	500080	040-27535383
बैंगलुरु	फ़र्स्ट फ्लोर, 'एफ़ विंग, केंद्रीय सदर, कोरामंगला	560034	080-25537244
पटना	बिहार राज्य कोऑपरेटिव बैंक भवन, अशोक राजपथ	800004	0612-2683407
लखनऊ	हॉल सं-1, दूसरा तल, केंद्रीय भवन, क्षेत्र-ए, अलीगंज	226024	0522-2325455
गुजरात	4-सी, नैप्च्युन टॉवर, चौथी मंज़िल, आश्रम रोड, अहमदाबाद	380009	079-26588669
गुवाहाटी	असम खादी एवं ग्रामोद्योग बोर्ड परिसर, पो. सिलपुखुरी, चानमारी	781003	0361-4083136

ग़ज़लें



दुनिया भूल जाना चाहती हूँ

नया सूरज उगाना चाहती हूँ
अँधेरा जीत जाना चाहती हूँ

ये मेरे हौसले का इम्तिहाँ है
मैं ख़ुद को आज़माना चाहती हूँ

मुझे मसरूफ़ियत भाती नहीं है
वो फ़ुर्सत का ज़माना चाहती हूँ

ये सर अपना तेरे शाने पे रखकर
मैं दुनिया भूल जाना चाहती हूँ

उगा कर प्यार की फ़स्लें जहाँ में
ज़मीं पे स्वर्ग लाना चाहती हूँ

वो अपनापन कहीं से ढूँढ लाओ
ग़म अपना मैं भुलाना चाहती हूँ

मिटा कर नफ़रतों का दौर मैं तो
मुहब्बत फिर निभाना चाहती हूँ।

भरोसा कीजिए

सोच का कुछ बड़ा दायरा कीजिए
तौर जीवन का फिर ख़ुशनुमा कीजिए

ख़त्म भी कीजिए अपनी नाराज़गी
मिलने-जुलने की अब इब्तिदा कीजिए

झुर्रियों की इबारत यही कहती है
अपने दम पर भरोसा रखा कीजिए

दौलतों से नहीं तौलिए ज़िन्दगी
बस सुकूँ-चैन की कामना कीजिए

बेसहारों का बनकर सहारा यहाँ
अपनी ख़ुशियों को भी दोगुना कीजिए

क्यों अकेले-अकेले रहा करते हैं
साथ अपने कोई हमनवा कीजिए

आग लग जाती है इक शरारे से ही
बात बेवजह की मत किया कीजिए।



कविता विकास
ई-मेल : kavitavikas28@gmail.com

वो फूल थे बिखर गए

बड़ा वो काम कर गए
जो हममें धैर्य भर गए

जो कोशिशों से डर गए
समय से पहले मर गए

समझ लो गुमशुदा उन्हें
जो रुक गए ठहर गए

सुगंध भर के सब तरफ़
वो फूल थे बिखर गए

ज़रूरतों के मारे हम
इधर गए, उधर गए

तेरी दुआओं से ही माँ
ग़मों से हम उबर गए

वो दिल तलक गए नहीं
नज़र से जो उतर गए। ❑



चौथी कड़ी

भक्त कवियों का जीवनदर्शन दूसरा था। उनकी जीवन दृष्टि से प्रकृति जितना मेल खा सकी, ली गई। प्रकृति अलग रूप से कहीं नहीं आई। 'रामचरितमानस' में भी प्रकृति का स्वतन्त्र वर्णन नहीं मिलता क्योंकि प्रकृति साध्य नहीं है। यद्यपि वे भक्त कवि दरबार में नहीं गए, नगर में ही नहीं रहे। प्रकृति के सूक्ष्म से सूक्ष्म रूपों से इनका परिचय था, अवसर-अवसर पर इस बात का संकेत मिल जाता है किन्तु प्रकृति के प्रति मोह इनमें नहीं है।

छायावाद का पुनर्मूल्यांकन



रामदरश मिश्र

छायावाद में प्रकृति चित्रण की अधिकता देखकर प्रायः लोगों को भ्रम हो गया कि छायावाद प्रकृति-सत्ता में ब्रह्म की अभिव्यक्ति देखने वाला रहस्यवादी काव्य है। प्रकृति कवि की आत्मा के समान ही ब्रह्म की चिर विरहिणी है जो प्रियतम को पाने के लिए सतत प्रयत्नशील है--कभी रोती है, कभी हँसती है। अर्थात प्रकृति सजीव है, निर्जीव नहीं। इन प्रकृति सम्बन्धी कविताओं को लक्ष्य बनाकर कुछ ने यह भी समझा कि छायावाद प्रकृति के भीतर छिपे ब्रह्म के रहस्यों को ढूँढता है। अहम् और इदम् का समन्वय रहस्यवाद है- अहम् कवि का स्व और इदम् मानवेतर प्रकृति। अतः छायावादी कविता उच्चकोटि की रहस्यवादी कविता है। उसमें अहम् और इदम् का समन्वय है। इन सब कथनों का चाहे जो भी मूल्य हो किन्तु इतना स्पष्ट है कि सबने छायावाद में प्रकृति-चित्रण की अधिकता पाई है।

प्रकृति को देखकर मनुष्य मुग्ध होता है, यह सभी मानते हैं। क्यों मुग्ध होता है, इसका उत्तर भिन्न-भिन्न प्रकार से दिया जाता है। यह भी सौन्दर्यबोध से जुड़ा हुआ एक प्रश्न है। शाश्वतवादियों के लिए कोई समस्या नहीं है- सौन्दर्य एक चिरन्तन तत्त्व है। वह है सो क्यों है? पूछना व्यर्थ है। ब्रह्म की लीला है, विधाता की सृष्टि है, इस दृष्टि में कुछ चीज़ें ऐसी हैं जो चिरकाल

के लिए सुन्दर हैं। मनुष्य उन्हें देखता है, सहज भाव से देखता है। स्वभाव से ही वह सुन्दरता का पुजारी है, इसकी कोई वैज्ञानिक या उपयोगितावादी व्याख्या नहीं हो सकती। चाँद सुन्दर है। क्यों सुन्दर है? बस सुन्दर है, क्यों है? का क्या प्रश्न? विधाता ने उसे सुन्दर बना दिया है। उसे हम देखते हैं बिना किसी प्रयोजन के। फूल, पक्षी, नदी, नाले, झरने, वन, पर्वत हमें भाते हैं, उन्हें हम देखते हैं। यह सौन्दर्य की शाश्वतवादी और निष्प्रयोजनवादी दृष्टि है। सौन्दर्य देश और काल निरपेक्ष है। अव्याख्येय है, सौन्दर्य को देखने की इच्छा मानव की सहज प्रवृत्ति है।

"विश्व की इस अनन्त सृष्टि की तरह कला भी आनन्द का ही प्रकाश है। उसके भीतर नीति अथवा शिक्षा का स्थान नहीं। उसके अलौकिक मायाचक्र से हमारे हृदय की तन्त्री आनन्द की झंकार से बज उठती है, यही हमारे लिए चरम लाभ है। उच्च अंग की कला के भीतर किसी तत्त्व की खोज करना सौन्दर्य देवी के मन्दिर को कलुषित करना है।"

ऐसे ही आलोचकों ने छायावादी कविताओं में चित्रित प्रकृति में ब्रह्म-वाणी सुनी है, चिरन्तन सौन्दर्य का मुख देखा है, रहस्यमय आनंद का लाभ लिया है।

हीगल मानता है कि भौतिक पदार्थों में जो सौन्दर्य है वह स्थायी और अकलुष नहीं है। कला-कृतियों में ही सौन्दर्य का पूर्णतम और चिर उन्मेष दिखाई पड़ता है। इस प्रकार वह भी कलाकृतियों में अंकित प्राकृतिक या मानवीय छवियों को वास्तव जगत की प्राकृतिक या मानवीय छवियों से भिन्न मानता है।

वास्तव में ऐसे अतिवादी विचारों से सौन्दर्य की व्याख्या नहीं हो पाती। प्रकृति का सौन्दर्य मानव को सदा से आकृष्ट करता आया है। क्यों करता आया है? किस हद तक करता आया है? भिन्न-भिन्न युगों के सामाजिक सम्बन्धों के कारण निर्मित होने वाले मानस-संस्कारों और दृष्टियों की वजह से प्रकृति के प्रति मानव की प्रतिक्रियाओं में क्या फ़र्क़ पड़ता है? इसकी विवेचना होने से ही प्रकृति के प्रति मानव की सौन्दर्य-दृष्टि का सही पता चल सकता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने प्रकृति के प्रति मानव-प्रेम को साहचर्य का परिणाम माना है। प्रकृति के साथ मानव का चिरन्तन सम्बन्ध है। उसके बीच वह पलता हुआ आया है। अतः वह उसकी हर चीज़ से प्यार करता है। जो चीज़ परिचित होती है, वह मनुष्य के लिए सामान्य होती है। जो चीज़ अपरिचित होती है वह असामान्य होती है। परिचित प्रकृति को चित्रित करने से ही वह कविता मनुष्य के रागात्मक हृदय को छू सकती है, असामान्य तो केवल चमत्कार की सृष्टि करता है।

"केवल असाधारणत्व की रुचि सच्ची सहृदयता की पहचान नहीं। है। शोभा और सौन्दर्य की भावना के साथ जिनमें मनुष्य जाति के उस समय के पुराने सहचरों की वंश-परम्परागत स्मृति वासना के रूप में बनी हुई है जब वह प्रकृति के खुले क्षेत्र में विचरती थी, वे ही पूरे सहृदय या भावुक कहे जा सकते हैं। वन्य और ग्रामीण दोनों प्रकार के जीवन प्राचीन हैं, दोनों पेड़-पौधों, पशु-पक्षियों, नदी-नालों और पर्वत-मैदानों के बीच व्यतीत हैं। अतः प्रकृति के अधिक रूपों के साथ सम्बन्ध रखते हैं। हम पेड़-पौधों और पशु-पक्षियों से सम्बन्ध तोड़कर बड़े-

बड़े नगरों में जा बसे, पर उनके बिना रहा नहीं जाता। हम उन्हें हर वक़्त पास न रखकर एक घेरे में बन्द करते हैं और कभी-कभी मन बहलाने के लिए उनके साथ चले जाते हैं।"

प्रकृति और मानव के सम्बन्धों की समस्या मात्र इतने से हल नहीं हो पाती। मनुष्य का प्रकृति के साथ साहचर्य पहले इतना घना था और अब नहीं है, इसके लिए कोई दोष नहीं है, यह तो ऐतिहासिक अनिवार्यता है। प्रकृति का साहचर्य न होने से ही क्या मनुष्य की भावुकता कम हो गई है और (क्या) भावुकता कम होने से काव्य का स्तर गिरता जा रहा है? मेरा ख़्याल है कि प्रकृति बहुचित्रित है फिर भी मनुष्य की सापेक्षता में ही उसका उचित मूल्यांकन हो सकता है। उसे देखने वाला मनुष्य है। उसकी शोभा को परखने वाला मनुष्य है। मनुष्य प्रकृति की शोभा, अनिवार्यता और आह्लादकारिणी शक्ति को इसलिए पा सका कि प्रकृति उसके जीवन-निर्वाह के लिए एक आवश्यक सत्ता है। मनुष्य ने प्रकृति से संघर्ष किया किन्तु प्रकृति के ही बीच इसका जीवन विकसित हुआ। अतः जिन प्राकृतिक उपादानों का उसके जीवन विकास में अपरिहार्य योग था, उन्हें प्राचीन ऋषियों और कवियों ने देवता या देवी मान लिया। आदि काल का समाज प्रकृति के बीच था। अतः प्रकृति से उनका सीधा सम्पर्क होना तथा उससे प्रभावित होना अत्यन्त स्वाभाविक था। जीवन के सारे उपकार प्रकृति के बीच बिखरे थे। अतः प्राचीन कविता में प्रकृति का व्यापक चित्र प्राप्त होता है।

बाद में समाज का रूप बदलता गया। धीरे-धीरे नगर बनते गए। नए सामाजिक सम्बन्धों की रचना होती गई। प्रकृति के साथ सीधा सम्पर्क टूटता और छूटता गया। ऐतिहासिक परिणति में सामाजिक जीवन का जो रूप होना था, हुआ। अलंकारवादी कवि हुए। हिन्दी के रीतिवादी कवि आए। जन-जीवन के बीच के होकर भी ये दरबारों में आश्रय पा जाने से जन-जीवन के नहीं रहे। अलंकारवादियों के यहाँ या दरबारों में आश्रय पाने वाले रीतिवादी कवियों के यहाँ जीवन के गहरे मूल्यों या भाव-सत्यों के स्थान पर बाहरी चमक-दमक, रूढ़ियों-आडंबरों का महत्व स्थापित हुआ। इनकी दृष्टि में जीवन का मूल्य भोग-विलास, शृंगार-प्रसाधन में ही है। अतः कविता का भी मूल्य बाह्य चमत्कारों में इन्हें दिखाई पड़ा। जीवन के अन्य उपकरणों के साथ ही प्रकृति भी चमत्कार की सृष्टि करने के लिए गृहीत हुई। नागरिक या दरबारी सभ्यता की यह ऐतिहासिक अनिवार्य परिणति थी। गाँवों के होकर भी ये कवि गाँवों की ओर नहीं गए। गए भी तो दरबारी शृंगार और चमत्कार की दृष्टि लेकर, इसलिए गाँवों में भी उन्हें सहेट-स्थल, अरहर-कपास, गन्ना-सन, सघन कुँज, एकान्त नदी, तीर आदि ही दिखाई पड़े। सारे प्राकृतिक उपादान एक ही दृष्टि से देखे गए– उस दृष्टि से जो तत्कालीन दरबारी सभ्यता के नाते बन सकी थी। अपने ढंग से यहाँ भी जीवन ही प्रधान रहा, प्रकृति गौण।

भक्त कवियों का जीवनदर्शन दूसरा था। उनकी जीवन दृष्टि से प्रकृति जितना मेल खा सकी, ली गई। प्रकृति अलग रूप से कहीं नहीं आई। 'रामचरितमानस' में भी प्रकृति का स्वतन्त्र वर्णन नहीं मिलता क्योंकि प्रकृति साध्य नहीं है। यद्यपि वे भक्त कवि दरबार में नहीं गए, नगर में ही नहीं रहे। प्रकृति के

सूक्ष्म से सूक्ष्म रूपों से इनका परिचय था, अवसर-अवसर पर इस बात का संकेत मिल जाता है किन्तु प्रकृति के प्रति मोह इनमें नहीं है। हाँ, प्रकृति वहीं आई है जहाँ वह कवि की किसी अभिप्रेत भावना को बल देती हो। अयोध्या कांड में चित्रकूट का थोड़े में बड़ा सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया गया है, इसलिए नहीं कि कवि को चित्रकूट की प्रकृति का चित्र देना था वरन् इसलिए कि चित्रकूट राम के ठहरने के लिए एक उपयुक्त स्थल है। वहाँ पापों का समूह नष्ट करने वाली गंगा जिसे सती अनुसूया ने अपने प्रताप से वहाँ ला दिया है। अत्रि आदि मुनिवर निवास करते हैं, जोग-तप करते हैं। शान्ति देने वाली प्रकृति है, सुहावने जंगल और पर्वत हैं। वहाँ इतनी शान्ति और मैत्री है कि हाथी, सिंह, मृग, विहग साथ-साथ विहार करते हैं। वास्तव में प्रकृति के उन्हीं अंशों को लिया गया है जो मन की वैराग्यजन्य शान्ति और पवित्रता के पोषक हैं। तुलसी ने इसी प्रकार अन्यत्र प्रकृति को मानव सत्यों की प्रतिष्ठा के लिए प्रयुक्त किया है। मानव जीवन ही लक्ष्य है। उस दृष्टि से प्रकृति जहाँ तक ग्राहय हो सकी, ले ली गई। सूरदास ने भी यमुना, वृन्दावन, कुँज, कदम्ब आदि को कृष्ण और गोपियों की लीला-भूमि के रूप में ही स्वीकार किया। उनके स्वतन्त्र सौन्दर्य की ओर आकृष्ट नहीं हुए। उनका अस्तित्व तो गोपाल के नाते ही है-- बिनुगोपाल बैरिन भई कुँजें।

छायावाद की प्रकृति तक पहुँचने के लिए इतनी पृष्ठभूमि पर्याप्त है। छायावाद के समय में राष्ट्रीय आंदोलन और व्यक्तिवादी चेतना के उन्मेष के कारण बँधी-बँधाई दृष्टि से जीवन को देखने की जड़ पद्धति टूट गई। दृष्टि उन्मुक्त हुई, हृदय उन्मुक्त हुआ। लीकों पर चलता हुआ जो भाराक्रांत परम्परा का आतंक था वह नए युग की चेतना से छिन्न-भिन्न हो गया। यह किसी एक व्यक्ति के साहस का कार्य नहीं था। यह तो पूरे युग की चेतना की उपज थी। दृष्टि और हृदय के उन्मुक्त होने से कल्पना उन्मुक्त हुई। लीक पर चलने वाले मनुष्य की कल्पना भी जड़ होती है। उसकी कल्पना मात्र नए-नए उपमान जुटाने का कार्य करती है किन्तु उन्मुक्त दृष्टि और हृदय वाले स्वाधीन व्यक्तित्व सम्पन्न कलाकार की कल्पना भी उन्मुक्त रूप से उड़कर जीवन-जगत के अनेक अछूते रहस्यों के पास तक पहुँचना चाहती है। अतः क्या मानव-जगत, क्या मनवेतर जगत सभी का उन्मुक्त चित्र छायावादी काव्य में उपलब्ध है। कहा जा चुका है कि मानवीय सौन्दर्य या नैसर्गिक सौन्दर्य सभी सापेक्ष शब्द हैं। सौन्दर्य वहाँ होता है जहाँ जीवन होता है-वैसा जीवन जैसा हम देखना चाहते हैं। अतः सौन्दर्य को लेकर विभिन्न प्रतिमान निर्मित होते रहते हैं। युग और समाज के अनुसार, द्रष्टा के व्यक्तित्व के अनुसार। छायावादी काल का जीवन अनेक रूढ़ियों से मुक्त हुआ। उस काल के सामाजिक सम्बन्धों में नवीनता आई, देश की जागृति का आवेश यहाँ से वहाँ तक व्याप्त हो गया। अतः कवियों ने अपने देश और काल के प्रकाश में उभरने वाले जीवन के अनुकूल प्रकृति को लिया। वह प्रकृति कोई नई नहीं थी- सारे युगों के कवियों के सामने प्रकृति का वह विस्तृत राज्य फैला हुआ था बल्कि नवीन युगों की अपेक्षा प्राचीन युगों में सामाजिक जीवन का फैलाव प्रकृति की गोद में अधिक था किन्तु अपने-अपने

समय और देश की सीमा में निर्मित होने वाले संस्कारों के अनुसार ही कवियों ने प्रकृति को देखा। छायावादी कवियों ने प्रकृति के अनेक उपकरणों को देखा क्योंकि उनकी कल्पना के पंख खुल गए थे। कल्पना सृजन और पुनर्सृजन दोनों करती है। छायावादी कल्पना ने देखी-सुनी जानी-पहचानी वस्तुओं टूट गई। संघटित कर पुनर्सृजन तो किया ही, साथ ही साथ अदृष्ट, अज्ञेय का रूप भी रचा। इस कल्पना ने प्रकृति के इन अनन्त उपकरणों को व्यक्तित्व दिया। यह छायावादी काव्य की बहुत बड़ी विशेषता है। प्रकृति का अपना व्यक्तित्व है कि नहीं और वह जड़ है या चेतन? यह फ़ैसला करना मुश्किल है। हमें कहना यह है कि प्रकृति को व्यक्तित्व की चेतना देने का कार्य छायावादियों ने इसलिए किया कि उनके पास अपना व्यक्तित्व था, उनकी दृष्टि और भाव-छवि उन्मुक्त हो गई थी, उनकी कल्पना के पंख खुल गए थे। उन्होंने व्यक्तित्वों को विशेष महत्व दिया। जड़-चेतन सबमें यह चेतन व्यक्तित्व आरोपित किया। इसलिए इन कवियों ने विगत युग के कवियों की तरह प्रकृति की बाह्य सुन्दरता पर अपने को नहीं अटकाया बल्कि उनकी दृष्टि जड़ दिखाई पड़ने वाले स्थूल दृश्यों और व्यापारों के भीतर पैठ कर उनकी आंतरिक सुन्दरता- उनकी चेतनशीलता- का उद्‌घाटन किया। छायावादी सौन्दर्यबोध की चर्चा करते समय कहा जा चुका है कि छायावादी कवियों की सौन्दर्य दृष्टि सौन्दर्य के बाहरी गठन को ही नहीं उसकी मंगलमयी चेतना को भी उद्‌घाटित करती है बल्कि प्रमुख रूप से उसी पर बल देती है। अतः प्रकृति के तमाम छोटे-बड़े पहलू छायावादियों की दृष्टि का स्पर्श पाकर सजीव हो गए। वे भी मानव के समान हँसते हैं, रोते हैं, प्यार करते हैं, वियोग झेलते हैं, उल्लास से उछलते-कूदते हैं तो विषाद से भारी हो जाते हैं, वे भी दो मित्रों की तरह आतप-वर्षा-शीत सहकर साथ-साथ बड़े होते हैं। कहीं प्यार की भाषा में गाते हैं तो कहीं संहार की भाषा में लहरों के अनन्त फण पटकते हुए गर्जन करते हैं। कहीं फूल की मीठी सुगन्धित हँसी हँसते हैं तो कहीं बिजली की कड़क में अपना रौद्र रूप दिखाते हैं। मनुष्य की तरह प्रकृति भी स्वच्छन्द व्यक्तित्व सम्पन्न हुई।

छायावादी प्रकृति की इस व्यक्तित्वशीलता को द्विवेदी युग की प्रकृति की स्थूलता के साथ रखकर देखें तो दो जीवन-दृष्टियों का अंतर स्पष्ट हो सकता है। द्विवेदी युद्ध नैतिकता का युग है। जिस प्रकार रीतिकालीन संस्कृति, सभ्यता और बद्ध प्रवृत्तियों के जड़ शिकंजे में फँसी हुई कविता व्यक्तित्वहीन थी, उसी प्रकार द्विवेदीकालीन नैतिकता और आदर्शवादिता के श्वेत वस्त्रों में कसी सहज मानवीयता अपने व्यक्तित्व का उभार नहीं पा सकी। किसी भी प्रवृत्ति का अतिरेक- चाहे वह नैतिक हो, चाहे अनैतिक– व्यक्तित्व को सहज भाव से उभारने में असमर्थ होता है। उसमें तो एक तनाव होता है, एक आदेश होता है। द्विवेदीकालीन नैतिकता उत्पन्न तो हुई तब युगीन आवश्यकता से- देश को पराधीनता, हीनता, सांस्कृतिक पतन की गहरी खाई से निकाल कर पुनः गौरव सम्पन्न करने की तड़प से- किन्तु वह मानव की संवेदनाओं और उसके व्यक्तित्व की अनेक छोटी-बड़ी आंतरिक प्रतीतियों और आकांक्षाओं के भीतर से नहीं फूटी, वरन् वह अतीत कालीन उदात्त संस्कृति, उदात्तशील, उदात्त विचारणा

को ओढ़ बैठी। अतएव स्वच्छन्द व्यक्तित्व यहाँ भी नहीं बन पाए। प्रेम जैसे अत्यन्त मानवीय भाव को भी रीतिकालीन कविता की प्रतिक्रिया में तथा आर्य समाज के सुधारवादी आंदोलन के प्रभाव में केवल उदात्त और आदर्श रूप दिया गया- इसमें मनुष्य के कर्त्तव्य पक्ष की प्रधानता हो गई, भोग पक्ष को नकार-सा दिया गया। हाँ 'साकेत' आदि में छायावादी प्रभाव के नाते प्रेम का मानवीय उष्म रूप भी मिलता है। इसलिए द्विवेदी काल में वर्णन की, इतिवृत्त की वृत्ति प्रधान हो गई।

चीज़ों को ऊपर से देखना और उनका वर्णन करना, यही उस काल के कवियों के लिए सम्भव हो सका। अतएव प्रकृति भी एक ओर तो व्यक्तिवहीन उदात्तता धारण किए हुए दिखाई पड़ती है दूसरी ओर वह चित्रित होने के स्थान पर वर्णित है। एक चित्र लीजिए। हिमालय का या पहाड़ का चित्र छायावादी कवि पन्त ने भी खींचा है और द्विवेदी काल के प्रतिनिधि कवि गुप्तजी ने भी। गुप्तजी की अभी उद्धृत की जाने वाली कविता 'साकेत' से ली गई है। 'साकेत' पर छायावादी कविता की गीतात्मकता और चित्रात्मकता का पर्याप्त प्रभाव है तो भी द्विवेदी काल की मूल वृत्ति या मूल संस्कार कवि को पकड़े हुए हैं। आप देखेंगे कि 'साकेत' के नवम सर्ग में गीतों के रूप में आने वाले प्राकृतिक दृश्यों में गीतात्मकता और व्यक्तित्वशीलता दोनों का अभाव है। गीत के रूप में होकर भी ये कविताएँ वर्णनात्मक हैं। प्रकृति के उदात्त स्वरूप को, उसके बाहरी अंगों को गिनाकर व्यक्त किया गया है-

'सिद्ध-शिलाओं के आधार
ओ गौरव-गिरि उच्च उदार
तुझ पर ऊँचे-ऊँचे झाड़
तने पत्रमय छत्र पहाड़
क्या अपूर्व है तेरी आड़
करते हैं बहु जीव विहार
जो गौरव-गिरि उच्च उदार
घिर कर तेरे चारों ओर
करते हैं घन क्या ही घोर
नाच-नाच गाते हैं मोर
उठती है गहरी गुँजार
ओ गौरव-गिरि उच्च उदार।'

लेकिन हिमालय पर ही एक कविता पन्त की है

'रवि की किरणें जिसे स्पर्श कर हो उठतीं आलोक निनादित/जिस पर ऊषा संध्या की छवि, आदि सृष्टि-सी ही स्वर्णांकित/इन्दु ज्वलित तुम स्फटिक धवलिमा, के क्षीरोदधि से हिल्लोलित/ज्योत्स्ना में थे स्वप्न मौन, अप्सरा लोक से लगते मोहित!'

X X X X

'मदन दहन की भस्म अनिल में उड़े, अब तक करती तन पुलकित/सती अपर्णा के तप से वनश्री अवाक सी लगती विस्मित/ अब भी ऊषा वहाँ दीखती वधू उमा के मुख-सी लज्जित/बढ़ती चन्द्रकला भी गिरिजा-सी ही गिरि के क्रोड़ में उदित।'

इस कविता में हिमालय का एक व्यक्तित्व उभरता है। कवि ने हिमालय के सुन्दर विराट और पवित्र सभी रूपों को बड़ी ही सूक्ष्म रेखाओं से चित्रित किया है। रंग, स्वाद, गंध, स्पर्श और शब्द इन्द्रबोध के इन सारे उपकरणों को कितनी सूक्ष्मता से छायावादी कविताओं में अंकित किया गया है, देखा जा सकता है। उपर्युक्त कविता में आने वाले सारे दृश्य सजीव और गतिमान हैं- हिमालय के कंकड़, पत्थर, बर्फ़, नदी-नाले, झरने आदि छायावादी कवि के स्पर्श से मानो

मुखर हो गए हैं और इनके अतिरिक्त घाटियों में, शिखरों पर, वनों में जो प्रकृति के सूक्ष्म और मूक व्यापार चला करते हैं, उन्हें भी इन कवियों ने साकार किया है।

वसन्त आ गया है। दोनों काल के कवि उसे देखते हैं। एक की दृष्टि में वसन्त में लहकने वाला रूप-रंग, चिड़ियों की बोली, होली आदि ही आ पाते हैं किन्तु दूसरा वसन्त की गति, उसकी सूक्ष्म भंगिमा, उसके भीतर खुलने वाले छवि के अनेक स्तरों और उनके सूक्ष्म प्रभावों को पकड़ता है। जीवन को बाहर से और भीतर से देखने का यही फल होता है।

'काली काली कोयल बोली
होली-होली-होली!
हँसकर लाल-लाल ओंठों
पर हरियाली हिल डोली,
फूटा यौवन, फाड़ प्रकृति की पीली-पीली चोली,
होली-होली-होली
अलस कमलिनी ने कलरव सुन उन्मद अंखियाँ खोली
मल दी ऊषा ने अम्बर में दिन के मुख पर रोली।' -(मैथिलीशरण गुप्त)

'चपल पग दीप शिखा के धर
गृह मग वन में आया वसंत
सुलगा फाल्गुन का सूनापन सौन्दर्य-शिखाओं में अनंत
सौरभ की शीतल ज्वाला से
फैला उर-उर में मधुर दाह
आया वसंत भर पृथ्वी पर
स्वर्गिक सुन्दरता का प्रवाह
पल्लव-पल्लव में नवल रुधिर
पत्रों में माँसल रंग खिला
आया नीली-पीली लौ से
पुष्पों के चित्रित दीप जला।' -(पन्त)

कहा जाता है कि छायावादी कवियों को प्रकृति से ही कविता लिखने की प्रेरणा मिली। मैं थोड़ा उलटा सोचता हूँ- विशेष जीवन दृष्टि प्राप्त होने से इन कवियों को प्रकृति को नई दृष्टि से देखने की प्रेरणा मिली। मूल मानव जीवन ही है, उसी केन्द्र के आस-पास प्रकृति घूमती है। जिन लोगों में जीवन की गति, जीवन की शक्ति, जीवन की छवि, जीवन की विविध भावात्मक स्थिति का बोध जागृत नहीं होगा, वे प्रकृति में ये चीज़ें कैसे देख पाएँगे! अतः पहले छायावादियों का स्वच्छन्द व्यक्तित्व मानव-छवियों का अनुभव कर सका होगा, बाद में उन्हीं छवियों को प्रकृति में देखा होगा। प्रकृति अपने-आप में क्या है? साहित्य में यह महत्व का नहीं है, उसे हम कैसे और कितना देख पाते हैं, यह महत्व का है। क्रौंच-मिथुन में से एक को मारने वाला वधिक भी आदमी ही था और उसकी मृत्यु पर शोक करने वाले वाल्मीकि भी आदमी ही थे। दोनों ने पक्षी को दो दृष्टियों से देखा। अभी उस दिन मैं अपने मित्र से कह रहा था कि फागुन में न जाने क्या मस्ती है और उसके साथ मेरे न जाने कितने भाव-संस्कार जुड़े हुए हैं कि जब वह आता है तो मैं कुछ अजीब-सा अनुभव करने लगता हूँ। जी चाहता है कि उड़ जाऊँ उन स्थानों को जहाँ मैंने फागुन को पूरे भाव से जिया है। मित्र बोले, ऐसा कुछ क्या है फागुन या वसन्त या पावस में? मुझे तो कुछ भी नहीं होता इन्हें देखकर। अब बताइए क्या कारण है कि फागुन मुझे मोहता है, उन्हें कुछ भी नहीं करता। मुझे लगता है कि दो व्यक्तित्वों में अंतर होता है। ❑

(क्रमशः)



'आजकल' जून 2011 अंक से

नागार्जुन

जनगण-मन का जाग्रत शिल्पी

नागार्जुन अपनी समझ और सोच के अनुसार 'सच' लिखा करते थे। वे 'प्रियं ब्रूयात मा ब्रूयात सत्यं अप्रियम्' के पक्षधर नहीं थे। वे अप्रिय सत्य भी बोला करते थे और लिखा करते थे। भले ही वह किसी के लिए तकलीफ़देह क्यों न हो! अप्रिय सत्य सत्य कहने वाली उनकी इस तरह की कविताओं में एक कविता है।

नागार्जुन के जितने भी रूप-नाम हों- ठक्कन मिसिर, बैजनाथ मिसिर, बैद्यनाथ मिश्र, विद्यार्थी, अकिंचन, विदेह, यात्री, नागार्जुन, अर्जुन नागा, बाबा..., वास्तव में नागार्जुन (बड़की तरौनी के ग़रीब का 'नेना') संस्कृत भाषा-साहित्य का नदीष्ण पण्डित होकर भी मूलतः एक निर्भीक 'जनकवि' थे और 'प्रियं ब्रूयात मा ब्रूयात सत्यं अप्रियम्' की उक्ति को उदूल कर 'सप्त तिक्त-सा' अप्रिय सत्य बोलने-लिखने का अदम्य साहस रखता था। इस जन्म-शतवार्षिकी के अवसर पर उस नागार्जुन को शत-शत नमन, जो कबीर, नज़रुल इस्लाम, निराला, भीमा भोई और मुक्तिबोध जैसे कवियों की परम्परा का एक अटूट स्तंभ है– उस माला का मनका नहीं, सुमेरु है।

पारम्परिक ढंग से संस्कृत पढ़कर मूलतः पण्डित बने वैद्यनाथ मिश्र ने घुमक्कड़, फक्कड़ और अक्खड़ बनकर तथा शून्यवादी बौद्ध दार्शनिक नागार्जुन का विरुद धारण कर एक लम्बी साहित्य-यात्रा पूरी की और बाएँ बाजू के सुर्ख़ सच से नाता जोड़े रखने में उन्होंने कभी कोई दुविधा महसूस नहीं की। परम्परा और यथास्थितिवाद के विरुद्ध 'विद्रोह' उनके लेखन का मुख्य स्वर था।

नागार्जुन का रचना-संसार वृहत् और वैविध्यपूर्ण

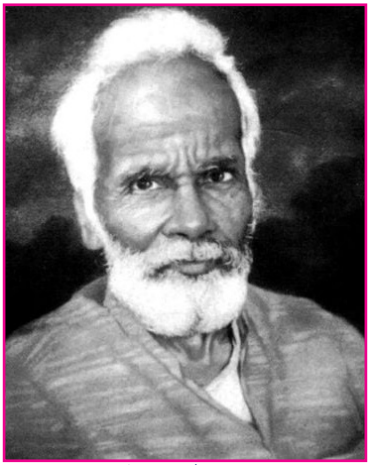


कुमार विमल

जाने-माने कवि, लेखक और समालोचक

(12 अक्तूबर, 1931 - 26 नवम्बर, 2011)

है। अनेक कविता-पुस्तकें ('चित्रा', 'पत्रहीन नग्न गाछ', 'युगधारा', 'खिचड़ी विप्लव देखा हमने', 'हज़ार-हज़ार बाहोंवाली', 'भस्मांकुर', 'भूमिजा', 'भूल जाओ पुराने सपने', 'पुरानी जूतियों का कोरस', 'पका है यह कटहल', 'इस ग़ुब्बारे की छाया में', 'प्रतिनिधि कविताएँ', 'आख़िर ऐसा क्या कह दिया मैंने', 'अपने खेत में', 'ऐसे भी हम क्या! ऐसे भी तुम क्या', 'सतरंगे पंखों वाली रत्नगर्भ', 'मैं मिलिट्री का बूढ़ा घोड़ा', 'प्यासी पथराई आँखें' इत्यादि)। कई उपन्यास ('पारो', 'बलचनमा', 'नवतुरिया', 'रतिनाथ की चाची', 'नई पौध', 'बाबा बटेसरनाथ', 'वरुण के बेटे', 'दुःखमोचन', 'कुंभीपाक', 'अभिनंदन', 'उग्रतारा', 'इमरतिया', 'जमनिया का बाबा', 'हीरक जयंती' इत्यादि)। समीक्षात्मक जीवनी ('एक व्यक्ति, एक युग : निराला'), कहानी-संग्रह, स्फुट निबन्ध-संग्रह और अनुवाद ('गीतगोविंद', 'मेघदूत', 'विद्यापति')।



अप्रतिम लेखक और कवि नागार्जुन
(30 जून, 1911 - 5 नवम्बर, 1998)

नागार्जुन का रचना-संसार ही नहीं, रचना-काल भी काफ़ी विस्तृत है किन्तु, नागार्जुन की काव्य-सर्जना का उत्कर्ष-काल हमें 1948 से 1953 की अवधि में मिलता है। इस अवधि में नागार्जुन ने न तो अपने को दोहराना शुरू किया था और न कविता के नाम पर 'ट्रैश' या 'अंडबंड' लिखा था। वामपंथी वाबस्तगी की दृढ़ता हो, व्यंग्य-विद्रूप का तीखापन या कवित्य में प्रौढ़ि और पांडित्य का समावेश हो—इन सभी दृष्टियों से उक्त काल-खण्ड नागार्जुन की कविता का उत्कर्ष-काल साबित होता है। जहाँ तक मुझे याद है, उसी अवधि में नागार्जुन ने 'तालाब की मछलियाँ', 'जातिगौरव गंगादत्त', 'रामराज', 'चना जोर गरम', 'जयति जयति जय सर्व मंगला', 'वह कौन था?' इत्यादि समर्थ कविताएँ रचीं और अनेक ऐसी कालोत्तीर्ण पंक्तियाँ लिखीं, 'रुद्रता अनिवार्य होगी भद्रता के पूर्व/इसके पीछे स्वतः प्रणोदित संघबद्ध जनता की हुँकृति/वन्या के प्लावन से सहसा पुष्करिणी की/परिधि गई है टूट/अथवा 'अंदर रावण, मुँह में राम।'

यह भी देखकर आश्चर्य होता है कि सन् 1952 में ही 'जयति जयति जय सर्वमंगला' शीर्षक लम्बी कविता ('नींटा' कविता) के अंतिम बंद में नागार्जुन ने 'सचेत जनता की जय' के साथ ही 'जनकवि की वाणी' का जयकार किया था- 'जय जय जय जनकवि की वाणी!'

सर्वाधिक लक्ष्य करने योग्य बात यह है कि इसी अवधि में सन् 1948 में नागार्जुन ने मछलियों के व्याज से 'जेंडर-जस्टिस' और नारी-स्वातन्त्र्य (वीमेन्स लिब) पर ऐसी ज़ोरदार तथा प्रौढ़ि-प्रकर्षपूर्ण कविता

लिखी है, जो आज भी प्रासंगिक ही नहीं, इस विषय की बेजोड़ कविता है। इस कविता का शीर्षक है 'तालाब की मछलियाँ'।

इसी तरह पंडित कवि नागार्जुन की इतिहास-बोधाश्रित विचार-प्रधान कविताओं में हमें उत्कृष्ट कोटि का कवित्व मिलता है। उदाहरण के लिए, 'सिंधुनद' शीर्षक कविता को देखा जा सकता है, जो कविता होने के साथ ही सामासिक दृष्टिकोण से लिखा हुआ सिंधु सभ्यता और संस्कृति का एक समीक्षात्मक सिंहावलोकन (क्रिटीक) है।

नागार्जुन के कवित्त्व की तरह नागार्जुन की वैचारिकता में भी अनेकत्र प्रौढ़ि मिलती है। मार्क्सवादी दृष्टिकोण में सुव्यवस्थित वैज्ञानिकता रहती है और वह वैज्ञानिकता किसी भी विचारधारा, कृति या सामाजिक परिदृश्य के मूल बिन्दु को पकड़ और परख लेती है। चूँकि नागार्जुन के सोच-विचार पर मार्क्सवादी प्रभाव था, इसलिए नागार्जुन की वैचारिकता में ऐसी पारदर्शी परख थी। 'गीतगोविंद' के हिन्दी अनुवाद की 'पूर्व पीठिका' में नागार्जुन ने लिखा है कि 'सामंती रसोपलब्धि का वैष्णवीकरण' जयदेव के 'गीतगोविंद' की विशेषता है। इस सूत्रात्मक संकेत के अनुसार जयदेव और उनके 'गीत गोविंद' पर एक ग्रंथाकार नया मूल्यांकन प्रस्तुत किया जा सकता है।

नागार्जुन के कवित्व में स्पर्शमणि का गुण था। कोई भी विषय-वस्तु हो- निकृष्ट से निकृष्ट विषय-वस्तु हो, वह नागार्जुन की कविता का 'कंटेट' बनकर अर्थ-गर्भ हो जाती थी– धन्य हो जाती थी। जैसे- 'मादा सूअर' (पैने दाँतों वाली), 'नेवला', 'कटहल', 'बूढ़ा घोड़ा', 'मिट्टी का तेल' इत्यादि। इसी तरह यह भी ध्यातव्य है कि नागार्जुन तात्कालिक विषयों पर भी 'टिकाऊ' कविताएँ लिखा करते थे। मज़ेदार बात यह है कि जिस तरह चित्रकार अपना 'सेल्फ़-पोट्रेट' बनाया करते हैं, इसी तरह नागार्जुन ने अपनी कविताओं में यदा-कदा अपना तंज़ आमेज़ 'सेल्फ़ पोट्रेट' प्रस्तुत किया है और अपने को 'वनमानुष' तथा 'उजबक' के रूप में चित्रित करने में कोई संकोच महसूस नहीं किया है। 'होतीं बस आँखें ही आँखें' शीर्षक कविता में उन्होंने लिखा है, 'थकी-पकी तनी-घनी भौहें/बेतरतीब बालों का जंगल/ झुर्रियों-भरा कुंचित ललाट/खिचड़ी दाढ़ी का उजाड़ घोसला...।' इसी तरह बांग्ला में रचित 'कवि' शीर्षक कविता में नागार्जुन ने, मानो स्वयं को चित्रित करते हुए लिखा है, 'सारा जीवन असुखे जाबे!/कोथाओ कि तुई आराम पाबे!/थाकबे कि हाथे टाका कोड़ि/ प्रज्ञाइ हबे तोर गलाए दौड़ि।'

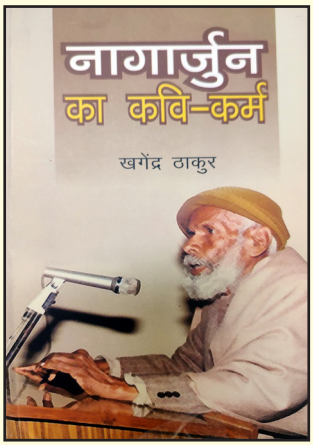
किन्तु, कुत्सा, जुगुप्सा, वीभत्स, कटु यथार्थ, तंज़निगारी और तफ़रीह से समीपी सम्बन्ध रखने के बावजूद नागार्जुन के सूक्ष्म सौन्दर्यबोध, प्रकृति प्रेम की बारीकी और काव्य-संगीत की योजना में कोई खुरंड या खोट पैदा नहीं हुई। उदाहरण के लिए, 'मेघ' पर रचित नागार्जुन की अनेक कविताएँ, जिनमें 'धिन-धिन धा धमक धमक मेघ बजे' जैसी पंक्ति बरबस याद आ जाती है और विद्यापति की पंक्ति 'बाजत द्रिमिद्रिमि धौद्रिमि द्रिमिया' अथवा जानकीवल्लभ शास्त्री की मेघ-विषयक पंक्ति 'मेघ-रंध्र में मंद्र-सांद्र ध्वनि द्रिम द्रिम उन्मद मृदंग कीं'

में निहित शब्द-संगीत की याद दिला देती है। नागार्जुन की मेघाश्रित प्रकृति-कविताएँ अनेक हैं, जो बहुत मुखर शब्द-संगीत के बिना भी लय, चित्रण तथा दृश्य-विधान की दृष्टि से उत्कृष्ट हैं। जैसे, 'बादल जहरीखाल के' नामक शीर्षक उनकी कविता 'उमड़-घुमड़कर/नभ में छाए/बादल जहरीखाल के/हरे-भरे होंगे ग्रामाँचल/अब पौड़ी गढ़वाल के/उमड़-घुमड़कर/नभ में छाए/बादल जहरीखाल के।'

नागार्जुन अपनी समझ और सोच के अनुसार 'सच' लिखा करते थे। वे 'प्रियं ब्रूयात मा ब्रूयात सत्यं अप्रियम्' के पक्षधर नहीं थे। वे अप्रिय सत्य भी बोला करते थे और लिखा करते थे। भले ही वह किसी के लिए तकलीफ़देह क्यों न हो! अप्रिय सत्य कहने वाली उनकी इस तरह की कविताओं में एक कविता है- सन् 1994 में रचित 'इगोर राहुलोविच' शीर्षक कविता, जिसमें लोला इवानोव्ना (राहुल की रूसी पत्नी) के हवाले से नागार्जुन ने महापंडित राहुल के व्यक्तित्व की वह आविल छवि अंकित की है, जो उस महापंडित ने रूस में और इस रूसी महिला के हृदय में एक 'इंडिश्की' (भारतीय) के रूप में हासिल की थी।

नागार्जुन जो उचित समझते थे, उसे बेबाक शब्दों में कह देते थे। ऐसी ही निर्मम बेबाकी का एक नमूना है, नागार्जुन की 'कौन हाँफ रहा है?' शीर्षक कविता। जिस कवि ने मार्क्स, लेनिन, स्टालिन और मास्को की प्रशंसा में अनेक कविताएँ लिखीं, उसी कवि ने कठोर होकर उक्त कविता में लिखा है- 'क्या सचमुच रूस के लोग भूखे-प्यासे/दिन पर दिन गुज़ारते हैं अब?/'पेरेस्त्रोइका' का क्या हुआ?/'ग्लासनोस्त' शंख-नाद का क्या हुआ...!'

नागार्जुन के तीखे-पैने और शाणित व्यंग्य-वाण अजीब होते थे, 'खटमल के लाल चिरंजीव'। वे भुक्खड़ शब्द-शिल्पियों को भी खरी-खोटी सुनाया करते थे। तटस्थ रहने वाले या अपने बुद्धि-विलास के गजदंती मीनार में क़ैद रहने वाले मुझ जैसे, 'बुद्धिजीवियों' से नागार्जुन को घोर घृणा थी।



लेखक : खगेंद्र ठाकुर
पृष्ठ : 316; **मूल्य :** 205 रुपये

प्रकाशन विभाग द्वारा प्रकाशित 'नागार्जुन का कवि-कर्म' पुस्तक में लेखक खगेंद्र ठाकुर ने नागार्जुन के व्यक्तित्व और कृतित्व के अनछुए पहलुओं की मार्मिक प्रस्तुति की है। पुस्तकें ख़रीदने और सूची देखने के लिए प्रकाशन विभाग की वेबसाइट publicationsdivision.nic.in देखें वेबसाइट पर जाने के लिए QR कोड स्कैन करें।

'संग तुम्हारे साथ तुम्हारे' शीर्षक कविता में उन्होंने सर्वहारा वर्ग के लोगों को सम्बोधित करते हुए लिखा है, 'पतित बुद्धिजीवी जमात में आग लगा दो/यों तो इनकी लाशों को क्या गीध छुएँगे/गलित कुष्ठवाली काया को/कुत्ते भी तो सूँघ-सूँघ कर दूर रहेंगे/अपनी मौत इन्हें मरने दो.../तुम मत जाया करना/अपना वो बारूदी छर्रा उनकी ख़ातिर।'

नागार्जुन के साथ एक मंच से कविता-पाठ करने का मौक़ा मुझे सन् 1953 में मिला था। पटना कॉलेज के कॉमन रूम में हिन्दी साहित्य-परिषद् की ओर से कवि-गोष्ठी का आयोजन हुआ था। उस समय हिन्दी विभाग के अध्यक्ष विश्वनाथ प्रसाद थे। कवि-गोष्ठी में पधारे हुए थे दिनकर, द्विज, नागार्जुन और कई अन्य कवि। उस समय तक द्विजजी साहित्यिक गोष्ठियों और सभाओं के लिए दुर्लभ हो चुके थे। शायद, इस आयोजन में द्विज सुधांशु के विशेष आग्रह पर आए होंगे। कॉमन रूम श्रोताओं से भरा हुआ था।

इस कवि-गोष्ठी में नागार्जुन ने, जहाँ तक मुझे याद है, अपनी दो कविताएँ सुनाई थीं- 'बहुत दिनों के बाद' और 'बादल को घिरते देखा हैं। तब से नागार्जुन के साथ सम्पर्क बना रहा और उनकी प्रगतिशील चेतना के कारण मैं उनका समादर करता रहा। सन् 1956-57 में मैं उन्हें एच.डी. जैन कॉलेज, आरा के एक भव्य ऐतिहासिक समारोह में (शायद, सदल साहित्य परिषद् के वार्षिकोत्सव में) पटना से आरा ले गया था। उस समय मैं एच.डी. जैन कॉलेज, आरा के हिन्दी विभाग में प्राध्यापक था और परमहंस राय उस कॉलेज के प्राचार्य थे तथा विदेश के लम्बे प्रवास से स्वदेश लौटने के बाद वे कॉलेज के साहित्यिक-सांस्कृतिक कार्यों में विशेष रुचि ले रहे थे। उक्त समारोह में स्वागत-भाषण और मुख्य अतिथि के परिचय के बहाने मैंने नागार्जुन की उपलब्धियों तथा उनकी कृतियों की विशिष्टता पर ज़ोरदार भाषण दिया था। नागार्जुन प्रसन्न थे। उतना बड़ा हाल प्राध्यापकों, छात्र-छात्राओं तथा स्थानीय साहित्य-प्रेमियों से खचाखच भरा हुआ था। देर संध्या तक नागार्जुन का कविता-पाठ चलता रहा। उन्होंने 'नवतुरिया', 'टिकोला', 'टूसा' इत्यादि जैसे चुहचुहाते-गुदगुदाते शब्दों का प्रयोग कर हाज़रीन के बीच समा बाँध दिया था।

बाद में सन् 1961 में जब मैं पटना विश्वविद्यालय आ गया, तब से नागार्जुन सन् 1974 तक यानी बिहार-राष्ट्रभाषा परिषद् के निर्देशक पद पर मेरे कार्यकाल तक कई बार मुसल्लहपुर स्थित मेरे निवास पर आते रहे किन्तु, सन् 1974 में जब मैं राज्य सरकार द्वारा बिहार लोक सेवा आयोग का सदस्य बना दिया गया, तब यह सम्पर्क, पद की विवशताओं के कारण, शिथिल होता गया। फिर गोष्ठियों, सभाओं या किताब की दुकानों में ही नागार्जुन से मेरा मिलना-जुलना सीमित हो गया। नागार्जुन से मेरी (अंतिम) भेंट डाक बंगला रोड पर स्थित पुस्तक-विक्रय-प्रतिष्ठान 'रीडर्स कॉर्नर' में हुई थी। तब नागार्जुन साहित्य अकादेमी के 'फ़ैलो' (सम्मानित सदस्य) बन चुके थे, बढ़ती हुई बधिरता के कारण 'हिअरिंग एड' लगाने लगे थे और अस्वस्थता तथा वृद्धावस्था के कारण

बहुत दुर्बल हो गए थे।

दूसरी ओर, अज्ञेय नागार्जुन को 'छोटी बातों' का कवि कहते थे। उनका कहना था कि प्रसंग-समर्थित बड़ी बातें आकर भी नागार्जुन के पल्ले नहीं पड़ती हैं- फिसल जाती हैं। अज्ञेय ने नागार्जुन की एक प्रसिद्ध कविता की इन पंक्तियों, 'कालिदास सच-सच बतलाना, पर पीड़ा से पूर पूर हो/थक-थक कर औ चूर-चूर हो, अमल-धवल गिरि के शिखरों पर/प्रियवर तुम कब तक रोए थे, रोया यक्ष कि तुम रोए थे?' को लक्षित करते हुए 'शाश्वती' की एक टीप में अपनी प्रतिक्रिया इस रूप में व्यक्त की है, नागार्जुन कहते हैं, 'कालिदास, सच बतलाना-वह यक्ष रोया तुम रोए थे?' ऐसा लगता है, उन्हें यह कविता बहुत प्रिय भी है-मेरे सामने ही कई बार उन्होंने समाजों में सुनाई है। शायद वह यह मानते हैं कि इसमें कुछ बड़ी बात कही गई है। मैं सुनकर सोचता रह जाता हूँ। मुझे लगता है वास्तव में तो मामला उलट गया है-बड़ी बात उसमें खो गई है। (यों नागार्जुन की कविता में अक्सर यह हो जाता है।) कालिदास का रोना तो तभी सार्थक है जब वह यक्ष के रोने में साधारणीकृत रूप में हमारे सामने आता है। कालिदास का रोना हमारे सामने कालिदास होने के रूप में ही आया, तो बात ही क्या बनी। फिर तो नागार्जुन भी रो लेते-हम ख़ुद ही क्यों न रो लेते।'

नागार्जुन जब युवा और अधेड़ थे, तब वे अपने को 'जनयुग का सैनिक' और 'पवित्र पावक का प्रहरी' कहा करते थे किन्तु, वृद्ध होने के बाद वे अपने को घुमंतू या बुज़ुर्ग 'यायावर' कहना पसन्द करते थे। उन्होंने कभी भी अपने को 'समय का सूर्य', 'हिन्दी का हाथी', 'ज्योति-विहग या ज्योति-धनुर्धर' नहीं कहा। बैजनाथ मिसिर उर्फ़ (गुडाकेश) 'अर्जुन नाग' ने अपना परिचय इस रूप में देना पसन्द किया, 'दमा का सनातन मरीज़/रात को थोड़ा सोने वाला/ घुमक्कड़ी का शौकीन/ मैं, यानी/ अर्जुन नागा.../ उर्फ़ बैजनाथ मिसिर/ उर्फ़ यात्रीजी/ साकिन मौज़े तरौनी बड़की/ थाना बहेड़ा/ ज़िला दरभंगा / बिहार राज्य...

औघड़-मलंग नागार्जुन अपने समाज और परिवेश में व्याप्त कुत्सा और वीभत्स को व्यक्त करने के लिए अघोरी-वांताशी भाव की कविताएँ भी लिखा करते थे, 'प्रभु, तुम कर दो वमन!/ होगा मेरी क्षुधा का शमन।'

अनंत वाग्विकल्प से समृद्ध और विपुल शब्द-भंडार की अधिष्ठात्री संस्कृत भाषा और संस्कृत साहित्य के नदीष्ण पण्डित नागार्जुन ने 'जनकवि' बनने के लिए कितनी दूरी तय की और अपने संस्कृत ज्ञान को, मानो जान-बूझकर कितना भुलाया– आम लोगों की 'बोली-बानी' से जुड़ने के लिए कितना 'अनर्लन' किया! तभी तो वे अपनी रचनाओं में ऐसे शब्दों का प्रयोग कर सके– रिसी-मुनि, परबंध, अपन को, टहल-बूल, बकुली लाठी, मझोल, सग्गी संतान, पुरुब जनम, आपोआप, आठ-दस ठो, केत्ता, इत्ती, इत्ता, इत्ते, ओफ़्फ़ोह, अस्सल, नंगम-नंगा, संगम-संगा इत्यादि।

संस्कृत-पण्डित होते हुए भी नागार्जुन ने अनलंकृत भाषा और बोल-चाल की

भाषा को अपनी कविता की भाषा के रूप में स्वीकार किया। 'कविता' शीर्षक कविता में नागार्जुन ने पदशय्या, अलंकार, शोभा और विच्छति को काव्य के अंतर्गत महत्व देने वाले रचनाकारों को लक्ष्य करते हुए लिखा है, 'आपके शब्दालंकार/भूस की बोरियाँ हैं।'

घुमंतू कवि नागार्जुन पैनी और बारीक परख के कवि थे। कम उम्र में ही उन्होंने यह महसूस किया था कि ग़रीबों के मुँह में थूक की कमी रहती है। उन्होंने यह भी देखा था कि भालू उल्टे पैर पेड़ पर चढ़ लेता है, 'भालू पेड़ पर/उलटे पैरों भी चढ़ लेता है/मृत्यु भी उल्टे पैरों/जीवन पर चढ़ लेती है।'

किन्तु, मृत्यु यथार्थ की गहरी पकड़ रखने वाले कवि की अमरता को नहीं जीत सकती है। शायद, इसीलिए नागार्जुन को अपनी अमरता में विश्वास था। उन्होंने सन् 1981 में रचित 'संग तुम्हारे, साथ तुम्हारे!' शीर्षक अपनी कविता में लिखा था, 'मैं न कभी मरने वाला हूँ/ मर-मर कर जीने वाला हूँ।'

नागार्जुन की चर्चा मुख्यतः एक जन-कवि, प्रगतिशील कवि और व्यंग्यकार कवि के रूप में होती रही है, तो समय और समाज की प्रासंगिकता की दृष्टि से उचित ही है तथा उनकी कविता के मुख्य स्वर के अनुकूल है किन्तु, उनकी कविता का एक अचर्चित पक्ष या दृष्टि से ओझल पक्ष यह है कि नागार्जुन प्रवासी, परिव्राजक, गृह त्यागी, घुमक्कड़, फक्कड़, फ़ाकामस्त और औघड़-मलंग होने के बावजूद गृहातुरता गृह-विरह तथा गृहानुरक्ति (नॉस्टॅल्जिआ) के उत्कृष्ट कवि थे। मिथिला की भूमि, जहाँ उनका घर-गाँव था, उन्हें बहुत प्रिय थी। घर छोड़ते समय महाभिनिष्क्रमण करते समय उन्होंने भले ही ऐसी पंक्तियाँ लिखकर अपनी भातृभूमि मिथिला को अन्तिम प्रणाम' किया था, 'अहिबातक पातिल फोड़ि-फोड़ि/ पहिलुक परिचय के तोड़-ताड़ि/पुरजन-परिजन सभकं छोड़ि-छाड़ि/हम जाय रहल छी आन ठाम/ माँ मिथिले! ई अंतिम प्रणाम।'

किन्तु, यह अंतिम प्रणाम वस्तुतः 'अंतिम' नहीं रह सका, पूर्वांतिम' भी नहीं रह सका, क्योंकि इस महाभिनिष्क्रमण या 'अंतिम प्रणाम' के बाद भी बौद्ध संन्यासी (भिक्षु) के रूप में दीक्षित हो जाने के बाद भी, एक लम्बे अंतराल के उपरांत ही सही, नागार्जुन बार-बार मिथिला (तरौनी गाँव) आते रहे जहाज़ के उस पाठी की तरह, जो जहाज़ से उड़-उड़कर फिर जहाज़ पर ही आ जाता है। उन्होंने अपने जीवन का अंतिम काल न तो जहरीखाल में बिताया, न श्रीलंका में और न सादतपुर में। उन्होंने अपने जीवन का अंतिम काल बिताया मिथिला में और अंतिम साँस ली हड़ाही दड़िभंगा के खाजासराय (लहेरियासराय) में!

जिस कवि ने आजीवन गृह-त्याग का निश्चय किया था, वही कवि जब प्रवास में गृह-विरह से उन्मथित-व्यथित और विचलित होकर मिथिला के हरित भू-भाग, बाग़-पोखर तथा सरित-संकुल पर ऐसी पंक्तियाँ लिखता है, 'गंगा-तरंग चुंबित चरणा/शिर-शोभित हिमगिरि निर्झरणा/गंडकि गावथि दहिना जहिना/कौसिकि नाचथि वामा तहिना/धेमुड़ा त्रियुगा जीवछ करेह/कमला बाग्मति सं सिक्त देह।'

तब फ़ारसी के प्रसिद्ध कवि रौदकी की 'बूए जूए मूलियाँ आयद हमीं' जैसी प्रसिद्ध 'नॉस्टैल्जिक' कविता बरबस याद आ जाती है।

नागार्जुन के इस गृह-मोह या गृहातुरता में हमें भवभूति के 'उत्तर रामचरित' की प्रत्यभिज्ञा-प्रधान स्मृति नहीं मिलती और न स्मृति-प्रमोष का अपाकरण करने वाला 'तत्ता-इदंता' का बोध ही मिलता है, बल्कि इसमें हमें गृहानुरक्ति पर निर्भर संवेदनामयी स्मृति का रागात्मक उत्कर्ष मिलता है।

ऐसा प्रतीत होता है कि ताज़िन्दगी राह पैमाई करने वाले कवि नागार्जुन को जब 'नास्टैल्जिया' या मिथिला की याद सताती थी, तब उनकी कल्पना-शक्ति, उनकी काव्य-प्रतिभा परवान पर पहुँच जाती थी। देखिए, आधा फागुन बीत जाने पर आम के मंज़र को चबा-चबाकर अपने सुर को 'पिजाने वाली' मिथिला की कोयल कवि को किस तरह अपनी ओर आकृष्ट करती है, 'चिबा चिबा के आमक मंजर / कोइली सूर पिजाबए।'

('पत्रहीन नग्न गाछ')

दिसम्बर, 1937 में प्रकाशित 'जन्मभूमि' शीर्षक कविता में उन्होंने मिथिला को सम्बोधित करते हुए लिखा था कि आपका यह चिरप्रवासी आत्मज आपसे कितनी ही दूर क्यों न रहे- वह अपना अश्रुसिक्त प्रणाम आपको भेजता रहेगा तथा बँधु-बाँधवों की दुरदुराहट और उपालम्भ की अवहेलना कर आपके प्रति मातृ-भाव बनाए रखेगा।

मिथिला की भूमि के प्रति मिथिला के विशेष व्यंजनों तथा भोज्य पदार्थों के प्रति कवि को इतना मोह था कि यदि कोई दिल्ली जैसी महानगरी में भी उसे मिथिला के भोज्य परोस कर खिला देता था, तो उसके मन में गृहानुरक्ति पैदा हो जाती थी और उस महानगर में उसे 'मिनी मिथिला' दिखाई पड़ने लगती थी। 'मिनी मिथिला' शीर्षक कविता के प्रथम बँध की पंक्तियाँ इसे प्रमाणित करती हैं, 'तिलकोड़ के तले हुए पत्ते/भूनी हुई मिसिऔड़ी दनौड़ी/रेहू की तली रसदार पेटी/कुतरुम की चटनी/मखाने की खीर/दिल्ली में भी सुलभ होता है मुझे.../ झा जी के प्रताप से...।'

कवि की स्मृति और प्रत्यामिज्ञा को कई अन्य उद्दीपन विभाव भी स्वप्न-मिलन में गृहानुरक्ति और 'नॉस्टैल्जिया' की ओर उन्मुख कर देते हैं। 'एते दिनुका बाद' ('इतने दिनों बाद') शीर्षक कविता में प्रकारांतर से इसकी अभिव्यक्ति मिलती है-

'बहुत दिनु का बाद- सुवासित खोपाक सौरभ/रतुठिया मुस्कीक झलकी/जित्त आंगक मृदुल-मादक स्पर्श/भेल सभथुक संगहि संग अनुभूति/बहुत दिनुका बाद/सुवासित जूड़े का सौरभ/रतजगी मुस्कान की झलक/जीवित अंग का मृदुल मादक स्पर्श हुई/सबकी एक साथ ही अनुभूति।'

('बहुत दिनों बाद')

यह लक्ष्य करने योग्य है कि कवि की गृहानुरक्ति और गृहातुरता (नॉस्टैल्जिया) की अधिकांश उत्कृष्ट कविताएँ, उसकी उत्कृष्ट प्रकृति-कविताओं की तरह मैथिली में रचित है। इसलिए दोलायमान मूल्यांकन कभी-कभी मैथिली के 'यात्री' को हिन्दी के 'नागार्जुन' से बड़ा कवि मानने लगता है। ❑



बंजारों के सौन्दर्यबोध का मूर्तन करती कृतियाँ

अखिल भारतीय बंजारा सेवा संघ द्वारा 1968 में किए गए एक सर्वेक्षण में बंजारा के 27 समानार्थक शब्द और 17 उप-समूह दर्ज किए गए। रिकॉर्ड किए गए समूहों में धारिया, चारण, मथुरिया, कोल्हाटी, मुकेरी, कैंजर, मुल्तानी आदि प्रमुख हैं। एक दौर में नमक एक प्रमुख उत्पाद था, जिसे उन्होंने देश के दूरदराज़ इलाक़ों तक पहुँचाया।



शैलेन्द्रकुमार शर्मा
ई-मेल : shailendrasharma1966@gmail.com

भारत की संस्कृति सही अर्थों में लोक, जनजातीय, विमुक्त, घुमंतू और अर्ध घुमन्तू समुदाय की संस्कृति है, जो सहस्राब्दियों से इन सबकी सक्रिय भागीदारी और जैविक आपसदारी से निरन्तर संवर्धित होती आ रही है। घुमंतू व्यापारी और चरवाहा जनजातियों के लोक समुदाय ने विविध क्षेत्रों की संस्कृति और सभ्यता के मध्य सेतु बनाने में अविस्मरणीय योगदान दिया है। घुमंतू या ख़ानाबदोश समुदाय के लोग एक समूह के रूप में जाने जाते हैं, जो अपनी आजीविका के लिए एक स्थान से दूसरे स्थान की यात्रा करते हैं। इनमें नमक व्यापारी, अनाज या मसाला व्यापारी, पशुपालक, भाग्य बताने वाले, जादूगर, आयुर्वेदिक चिकित्सक, बाज़ीगर, कलाबाज़, कहानी सुनाने वाले, सपेरे, पशु चिकित्सक, गुदना बनाने वाले, घट्टी बनाने वाले या टोकरी बनाने वाले सम्मिलित हैं। बंजारा लोग इन सभी के बीच महत्वपूर्ण ख़ानाबदोश व्यापारी के रूप में जाने जाते हैं। उनका कारवाँ 'टांडा' या 'तांडा' कहलाता है।

बंजारा समुदाय को गोर, लमान या लमाण, लमाणी, लम्बाड़ी, लंबाड़ा, लबान, लबाना, नाइक आदि नामों से भी जाना जाता है। यह ऐतिहासिक रूप से ख़ानाबदोश व्यापारिक समुदाय है, जिसकी उत्पत्ति राजस्थान के मेवाड़ क्षेत्र में मानी जाती है। अब बंजारा

जन सम्पूर्ण उत्तर-पश्चिमी, पश्चिमी और दक्षिणी भारत में निवासरत हैं। विभिन्न राज्यों में बंजारों को अलग-अलग नामों से पुकारा जाता है। बंजारे आमतौर पर ख़ुद को 'गोर' कहते हैं, इससे सम्बन्धित 'गोर माटी' या 'गोरमाटी' शब्द का भी उपयोग किया जाता है, जिसका तात्पर्य है 'अपने लोग'। कुछ विद्वान मानते हैं कि चौदहवीं शताब्दी के आस-पास से यह समुदाय बंजारा के रूप में जाना जाने लगा और लेकिन इससे पहले इनका सम्बन्ध 'लमाण' या 'लमान' के साथ जोड़ा जाता है, जिनका लगभग 3000 साल का इतिहास है।

अखिल भारतीय बंजारा सेवा संघ द्वारा 1968 में किए गए एक सर्वेक्षण में बंजारा के 27 समानार्थक शब्द और 17 उप-समूह दर्ज किए गए। रिकॉर्ड किए गए समूहों में धारिया, चारण, मथुरिया, कोल्हाटी, मुकेरी, कैंजर, मुल्तानी आदि प्रमुख हैं। एक दौर में नमक एक प्रमुख उत्पाद था, जिसे उन्होंने देश के दूरदराज़ के इलाक़ों तक पहुँचाया।

बंजारों के सौन्दर्यबोध और मनोभावों का मूर्तन उनकी विविध कलाभिव्यक्तियों और मौखिक साहित्य में हुआ है। सौन्दर्य या लालित्य के आश्रय से व्यक्त होने वाली कलाएँ ललित कला कहलाती हैं अर्थात् वह कला जिसके अभिव्यंजन में सुकुमारता और सौन्दर्य की अपेक्षा हो और जिसकी सृष्टि मुख्यतः मनोविनोद के लिए हो, जैसे विभिन्न प्रकार की चित्रकलाएँ, गुदना, वस्त्राभूषण आदि। बंजारा समुदाय की विविध कलाभिव्यक्तियों में लालित्य तत्त्व के दर्शन सहजता से हो जाते हैं। वर्तमान में बंजारा हस्तकला को देश के विभिन्न प्रान्तों में पसन्द करने के साथ वैश्विक पहचान मिलना शुरू हो गई है।





लम्बानियों में रंगोली की कला अनुपम है। यह आमतौर पर ज्वार पाउडर, हल्दी पाउडर, गुलाल का उपयोग करके पुरुषों द्वारा भगवान या देवी की वेदी के सामने खींचा जाता है। अलग-अलग देवी-देवताओं के सामने अलग-अलग डिज़ाइन तैयार किए जाते हैं। मरियम्मा देवी की विशिष्ट रंगोली ज्वार के आटे, हल्दी पाउडर, कुंकुम और गुलाल का उपयोग करके बनाई जाती है।

लम्बानी महिलाएँ अलग-अलग डिज़ाइन के गोदने बनवाना पसन्द करती हैं। शरीर के विभिन्न अंगों को गुदनों के माध्यम से चित्रित करने के पीछे बंजारा स्त्रियों का अलंकरण के प्रति आकर्षण का भाव प्रकट होता है। बंजारा स्त्री और कन्याएँ अपने दोनों हाथों पर, मस्तक पर, नाक के दाएँ ओर गुदना आकृतियाँ बनवाती हैं। इन आकृतियों में चँद्र, अर्धचँद्र, फूल तथा माँगलिक प्रतीक होते हैं, जो इनके सौन्दर्यबोध और जातीय स्मृतियों के परिचायक हैं।

बंजारा जनजाति की कंघी कला अपनी विशिष्ट पहचान रखती है। गवारिया बंजारा समाज का पुराना परम्परागत व्यवसाय लकड़ी की कंघी बनाना रहा है, जो आज भी अनेक क्षेत्रों में प्रचलित है। राजस्थान के बंजारा समाज के भंवररामजी कूर्रा गवारिया कृष्णगंज, सिरोही अपनी हाथों की कला से लकड़ी की बहुत ही सुन्दर कंघी बनाते हैं। हाथ के कौशल से तैयार किए जाने वाले इस रचनात्मक उत्पाद के लिए किसी आधुनिक मशीनरी या उपकरणों की मदद नहीं ली जाती। मध्यप्रदेश में बसे बंजारा समुदाय के लोग भी कलात्मक कंघियाँ बनाने के लिए जाने जाते हैं। उज्जैन, रतलाम और नीमच के बंजारे इस कला में निष्णात हैं। उज्जैन में दानी गेट के पास काँगी मोहल्ला में रहने वाले लकड़ी की कंघी बनाने वाले थेडालाल बंजारा एक महत्वपूर्ण कलाकार हैं। वे अपनी तरह के अंतिम कलाकार हैं। उनका कहना है कि उनके काम को प्लास्टिक चुनौती दे रहा है, जो लोकप्रिय हो गया है लेकिन प्लास्टिक की तुलना में, लकड़ी के कंघे कहीं बेहतर होते हैं। वर्तमान में प्रायः हस्तशिल्प मेलों में ही उनकी कला कौशल का परिचय मिलता है।

छत्तीसगढ़ राज्य में बसे बंजारे बाँस की बनी छोटी टोकरी, जिसे 'गप्पा' कहते हैं, पर कपड़ा चढ़ाकर सिल देते हैं, जो उनकी सौन्दर्य दृष्टि का परिचय देती है। उस कपड़े पर कौड़ियाँ और शीशे जड़कर सज्जा की जाती है। बाँस की टोकरी बसोर या पारधी समुदाय के बाँस शिल्पी बनाते हैं, जिसे बंजारा लोग ख़रीदकर उस पर सजावट का कार्य करते हैं। यह गप्पा



बंजारा कढ़ाई कला से निर्मित सुन्दर हाथी

घसिन माता का शृंगार है। गप्पाघसिन माता को गोंडिन देवी, पेंड्राऔंडनी, दुर्पत्ती माई, झिटकू-मिटकि आदि भी कहते हैं। इसी तरह छत्तीसगढ़ में बंजारों द्वारा निर्मित की जाने वाली टोपी बहुत ही लोकप्रिय है। यह देवी-देवताओं द्वारा सर पर पहना जाने वाला सुन्दर वस्त्र है। यह अनेक रंग के कपड़ों से बनाया जाता है। प्रत्येक देवी के लिए एक निश्चित रंग की टोपी होती है। प्रत्येक देवी-गुढ़ी में अन्य आनुष्ठानिक वस्तुओं के साथ देवी के वस्त्र शृंगार भी बाँस की एक बड़ी ढक्कनदार टोकरी में रखे रहते हैं। इन्हें सिरहा पर देवी चढ़ने पर निकाला जाता है और सिरहा पर आई देवी को पहनाया जाता है। यह वस्त्र या तो कोई व्यक्ति मनौती पूर्ण होने पर गुढ़ी में चढ़ाता है अथवा गाँव के लोगों के चंदे से जमा हुए पैसे से ख़रीदे जाते हैं।

बंजारा जन अपनी विशिष्ट वेशभूषा और आभूषणों के लिए पहचाने जाते हैं। उनकी वेशभूषा विशेष प्रकार की होती है। किसी अन्य समुदाय में शायद ही इतने कलात्मक वस्त्र और आभूषणों का प्रयोग होता होगा। बंजारा स्त्रियाँ रंग-बिरंगे वस्त्र स्वयं तैयार कर लेती हैं। बंजारा कला राजस्थान के अन्य समुदायों, विशेष रूप से लेपो कला से मेल खाती है। लम्बानी महिलाएँ कढ़ाई के माध्यम से अपने कपड़े तैयार करने में माहिर हैं। लेपो कढ़ाई के काम से बनता है। महिलाएँ कढ़ाई में विशेषज्ञ होती हैं, जिसमें कपड़ों पर दर्पण के टुकड़े, सजावटी मोतियों और सिक्कों की सिलाई शामिल होती है। दर्पण, गोले और जटिल कढ़ाई से अलंकृत, बंजारों

का कढ़ाई का काम आश्चर्यजनक रूप से आधुनिक सौन्दर्य को प्रदर्शित करता है। कढ़ाई कौशल के साथ मालिक को नुकसान से बचाने और शुभ शक्तियों को प्राप्त करने के लिए विकसित की गई बंजारा तकनीक भारत में अद्वितीय है और इसकी साधना करने वाली महिलाओं की सामर्थ्य का प्रमाण है।

बंजारों में रंग-बिरंगी और विविध कशीदाकारी सम्पन्न वस्त्रों का विधान सौन्दर्य में अभिवृद्धि के लिए होता है। बंजारा स्त्रियों के वस्त्र कलात्मक सौन्दर्य के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। बंजारा समुदाय अपनी स्त्रियों के रंग-बिरंगे वस्त्रों और चाँदी के बने भारी-भरकम गहनों के लिए जाना जाता है। बंजारा स्त्रियाँ चमकीले लाल, नीले, पीले कपड़ों पर मोटे सूती धागे से की गयी कशीदाकारी और शीशों के जड़ाव से सजे वस्त्र पहनना पसन्द करती हैं। राजस्थान और विशेषतः आंध्रप्रदेश, तेलंगाना, महाराष्ट्र तथा कर्नाटक के बंजारों में कशीदा और एप्लिक के काम में शीशों के जड़ाव से वस्त्र सज्जा की एक समृद्ध परम्परा है। वे केवल अपने पहनने के वस्त्र ही नहीं अपने पशुओं को सजाने, घरेलू थैले, थैलियों एवं कपड़े से बनी अन्य उपयोगी वस्तुओं पर भी एप्लिक एवं कशीदाकारी करती हैं। प्रत्येक घर में फ़ुर्सत के समय बंजारा स्त्रियाँ अपने वस्त्रों को घर में ही कलात्मक ढंग से कशीदाकारी करते हुए तैयार करती हैं। इनमें काँच के टुकड़ों, छोटी कौड़ियों और मुद्राओं का प्रयोग किया जाता है। स्त्रियाँ काँचली को विशेष प्रकार से सजाती हैं। काँचली चोली की तरह दिखती है। काँचली का मुख्य रूप से तीन भागों विभाजन कर सकते हैं- खविया, पाटा या थानथान्या और पेंटी। खविया दोनों भुजाओं पर तीन रंगों के कपड़े को (काला, पीला, लाल) लेकर सीला जाता है। भुजाओं पर काँच तथा कौड़ी जोड़कर भी सीते हैं। पाटा या थानथान्या को वक्षस्थल पर पहना जाता है। कपड़े को अंदर से नरम तथा बाहर से चमकी लगाकर यह वस्त्र सीला जाता है। इस पर भी काँच, कौड़ी, कँदा जोड़कर सीलते हैं। काँचली के अंत में पेटी जोड़ी जाती है। यह पेट और पेड़ू के बीच रहती हैं। पेटी पर भी फूँदा, काँच कौड़ी जोड़कर सीला जाता है। पेटी के अंदर पैसे छुपाने के लिए खीसा भी बना लेते हैं। फेटिया का वज़न पाँच किलो तक का होता है। बंजारा बुज़ुर्ग कहते हैं कि फेटिया बीस मीटर वस्त्र से बनाई जाती है।

बंजारा जन प्रत्येक रूप से कमर पर बाँधने के लिए लेपो बनाते हैं। बंजारिन अपनी कमर के हिसाब से नाप लेकर लेपो





तैयार करती हैं। लेपो को एकदम कमर पट्टे की तरह मज़बूती से तैयार करते हैं। इस पर भी काँच, कौड़ी पारा आदि जोड़कर इसे आकर्षक बनाते हैं। लहँगा या लेंग (घाघरा) का विस्तार कितना होना चाहिए, इसके हिसाब से घेरा बनाया जाता है। घेरे को लेपो से जोड़ दिया जाता है। घेरे को भी रंग-बिरंगी डोरी से सीला जाता है। लहँगा ख़राब न हो, इसलिए इसमें विशेष प्रकार की बड़ी पट्टी लगाई जाती है और वह धोने पर भी ख़राब नहीं होती है। लामण पर भी काँच, कौड़ी को जोड़ते हैं। बंजारा स्त्रियों को सबसे ज़्यादा ओढ़नी ही सुन्दर बनाती है। ओढ़नी तीन मीटर तक रहती है। ओढ़नी को बंजारिन विशेष प्रकार से सजाती हैं। ओढ़नी सर से थोड़ा नीचे करने पर उसे 'घूँघटो' (घूँघट) कहते हैं। ओढ़नी पर भी लाँच, पतड़ी, फूँदा, पारी आदि से अलंकरण करते हैं।

सन्दूर लम्बानी कढ़ाई कपड़े की प्रसिद्ध कढ़ाई है, जिसका प्रमुख केन्द्र कर्नाटक का संदुरु, बेल्लारी ज़िला है और इसे जीआई टैग भी प्राप्त हुआ है। लम्बाड़ा कढ़ाई कई अन्य नामों से भी जानी जाती है, लम्बाड़ी कढ़ाई, लम्बानी, सन्दूर लम्बानी कढ़ाई, बंजारा कढ़ाई, लेपो आदि। लम्बाड़ा कढ़ाई में पैचवर्क, एप्लिक, बीडवर्क और कढ़ाई एक साथ होती है। लम्बाड़ा कढ़ाई में टाँके और तालियों के संयोजन के साथ-साथ मिरर वर्क और अन्य अलंकरणों का प्रयोग किया जाता है। बंजारा महिलाएँ अपने रंगीन परिधानों, जैसे फेटिया और काँचली या ब्लाउज़ को सजाने के लिए सिक्कों, गोले, बटन, कौड़ी और दर्पण के छोटे टुकड़ों का उपयोग करती हैं। मोटिफ़्स मुख्य रूप से ज्यामितीय होते हैं, जिनमें ग्रिड जैसे पैटर्न होते हैं। लम्बाड़ा कढ़ाई के काम से सजाए गए वस्त्रों की विदेशों में भी माँग है। लंबाणी परिधानों के अलावा, इस कला को विभिन्न प्रकार के उत्पादों, जैसे कुशन कवर, बेडकवर, वॉल हैंगिंग, वस्त्र और सामान जैसे बैग, हैंडबैग, कमर बेल्ट आदि में भी प्रयुक्त किया जाता है। कढ़ाई के अत्यंत कुशल और सम्मोहक कार्य लिए हुए बंजारा कला में विशिष्ट दर्पण कार्य परिलक्षित होता है। आश्चर्यजनक क़िस्में और वॉल हैंगिंग डिज़ाइन प्रकृति से प्रेरित होती हैं, जिसमें सुन्दर पैटर्न समाहित किए जाते हैं। बंजारा कला कार्य से समृद्ध तेलंगाना एवं अन्य राज्य विशेष रूप से इस ख़ानाबदोश समुदाय के घर हैं, जिन्होंने कला और शिल्प के क्षेत्र में अपनी अलग छाप छोड़ी है। दर्पण का काम लिए हुए बैग की आश्चर्यजनक क़िस्मों में भी उनकी कलाभिरुचि परिलक्षित होती है। वे बेहद सुन्दर और आकर्षक पैटर्न के साथ उन्हें बनाते हैं।

लम्बानी महिलाएँ अपने गले, नाक, आँख, बाल, हाथ, अँगुलियों और पैरों के चारों ओर विभिन्न धातुओं से बने आभूषण पहनती हैं। बंजारा समुदाय की पारम्परिक कला सिक्कों से आभूषण बनाना भी है। चाँदी के सिक्कों से बने हार को 'वांकिया' के नाम से जाना जाता है जो पच्चीस पैसे के सिक्कों और छोटी घंटियों से बनाया जाता है। चाँदी की चेन के साथ इन आभूषणों की सुन्दरता और भी बढ़ जाती है। लम्बानी महिलाओं के पैर के प्रमुख गहने हैं, कस्से (काँस्य के गोल आभूषण), चेन (चाँदी से बने), वीती (पैर की उँगली के लिए चाँदी की अँगूठी), फूलिया (पैर की चाँदी की मछली की तरह के छल्ले) आदि। परम्परागत रूप से लम्बानी महिला अपने हाथों पर हाथीदाँत की चूड़ियाँ पहनती है। आजकल हाथीदाँत उपलब्ध नहीं है, इसलिए प्लास्टिक की चूड़ियाँ आम हैं। कई समुदायों की स्त्रियाँ अधिकांश आभूषणों को विशेष अवसरों पर धारण करती हैं, किन्तु बंजारिन अपने अलंकारों को देह से कभी अलग ही करना नहीं चाहतीं। इनके अधिकांश आभूषणों में कलात्मकता के साथ सौन्दर्यबोध के दर्शन होते हैं। इनमें उल्लेखनीय हैं- आटी, घूघरी टोपली, बोटला, भुरिया, बलिया, हाँसलो, कोपरिया, कावली, फेटिया, ओणी (ओढ़नी) वीटी फूला, अँगूटला, गरतणी, कल्ला आदि।

आटी को चाँदी से बनाया जाता है। ओढ़नी आटी के ऊपर से ओढ़ी जाती है। आटी सिर के पीछे बाल में खोंसकर रखते हैं। इससे ओढ़नी का सौन्दर्य बढ़ता है। घूघरी टोपली एक प्रमुख आभूषण है। घूघरी का अर्थ हैं 'घुँघरू' और टोपली का अर्थ है 'टोपी'। टोपी के आकार में रखकर नीचे के भाग में छोटे-छोटे घुँघरू होते हैं। माथे के दोनों ओर कानों के बीच यह लटकती है। घूघरी टोपली को बालों की लटों में अटकाते हैं। पूर्व विवाह व्यवस्था में ससुराल वाले विशेष रूप से इसे ही लाते थे। आजकल बंजारा समाज में इसका अधिक प्रचलन दिखाई नहीं देता। इसको 'सौभाग्य का सिन्दूर' माना जाता है। भूरिया छोटी नथ जैसी होती है लेकिन नथ से इसका आकार बड़ा होता है। सोने से निर्मित भूरिया बंजारिन के नाक की शोभा बढ़ाती है।

वीटी फूला अँगुलियों पर धारण किया जाता है। वीटी अर्थात् अँगूठी, फूला का अर्थ है 'फूल'। बंजारिन अपनी अँगूठी को भी अधिक महत्व देती हैं। बंजारिन साधारण अँगूठी नहीं पहनती हैं। उनकी अँगूठी विशेष प्रकार से बनाई जाती है, जो उँगली को सुशोभित करती है। अँगूठी को चाँदी से बनाया जाता है। अँगूठी को फूल के आकार में बनाने के कारण





बंजारा स्त्रियों के नख से शिख तक में धातु एवं हाथी दाँत से निर्मित आभूषण और कढ़ाईयुक्त वस्त्र

उसे 'वीटी फूला' कहते हैं। भारतीय संस्कृति के अनुसार हर विवाहित स्त्रियाँ अपने स्वामी का प्रतीक मानकर पैर की अँगुली में बिछिया पहनती हैं। बंजारा स्त्रियाँ पैर के अँगुलियों के साथ अँगूठे में भी अँगूठी पहनती हैं। वे अँगूठे में पहनने वाली अँगूठी को भी विशेष प्रकार से आकर्षक बनवाती हैं। अँगूठे में पहनने वाली अँगूठी को ही 'अँगूटला' कहते हैं। चाँदी से कल्डा बनाया जाता है। कल्डा पैर में पायल की तरह पहना जाता है। गरतणी सिर्फ़ युवतियाँ पहनती हैं। गरतणी को युवतियाँ पायल की तरह बनाकर पैर पर बाँध लेती हैं। विवाह होने के बाद, गरतणी उसी दिन तोड़ दिया जाता है।

बलिया को हाथी के दाँत से बनाया जाता है। बलिया सफ़ेद रंग के होते हैं। इसे स्त्रियाँ दोनों हाथों में पहनती हैं। उसे भुजदण्ड-सा भी पहना जाता है। बंजारिन के हाथ बलियों के कारण सुरक्षित रहते हैं। बंजारा लोग अधिकतर वन में रहने के कारण हानिकारक जंतुओं से बचने के लिए इसका उपयोग करते थे। हाँसलो सिक्के से बनाया जाने वाला हार है। पूर्वकाल में चाँदी के सिक्के रहते थे। उन सिक्कों से बने हार को 'हाँसलो' कहते हैं। इसके माध्यम से धन भी बच जाता था और गले का गहना भी तैयार हो जाता था। बंजारा समाज के निर्धन वर्ग के लोग हाँसलो ही पहना करते थे, लेकिन चाँदी के नहीं। बंजारा समाज की आर्थिक उन्नति होने के बाद नए ढंग से चाँदी के आभूषण भी वे बनाने लगे हैं। कोपरिया विशेष आकार से बनाया जाता है। कोपरिया भुजा में पहनने के कारण, बंजारा स्त्रियों की भुजाओं की शोभा बढ़ जाती है।

चोटला बालों को सँवारने के ख़ास तरीकों में आता है। पूर्वकाल में बंजारिन के पास अधिक समय नहीं रहने के कारण, बालों की सजावट करने में कठिनाई होती थी। बालों में एक बार चोटला गूँथने पर एक हफ़्ते तक बालों को सँवारने की ज़रूरत नहीं पड़ती थी। चोटले का वज़न एक किलो से दो किलो तक रहता है। बालों में चोटला गूँथने पर, बालों को अधिक सुरक्षा मिलती है और बालों का झड़ना भी कम हो जाता है।

बंजारा समुदाय की बहुरंगी रूपंकर कलाएँ, शिल्प और वस्त्राभूषण उनकी सौन्दर्य दृष्टि, विविधवर्णी अनुभूतियों और शेष सृष्टि के साथ सम्बन्धों को प्रतिबिम्बित करते हैं। उन्होंने तमाम तरह के जीवन संघर्षों, अविराम यात्रा और अभाव के मध्य जीवन के लालित्य को सहज ही जीवंत रखा है। जीवन की जड़ता और एकरसता को तोड़ने की दृष्टि से बंजारा समुदाय के विविधरंगी रूपांकन, हस्तशिल्प, वस्त्र, आभूषण आदि का अविस्मरणीय योगदान है। ❑



गोवा में पाँच दिन

वैसे तो गोवा में छोटे-बड़े लगभग 40 बीच (तट) हैं मगर मुख्य रूप से उनमें कुछ ऐसे बीच हैं जिनका अपना ख़ास महत्व है। उन्हीं में एक कैंडोलिम बीच भी है। यहाँ का दृश्य बेहद मनोरम है जो अगुआड़ा क़िले से चपोरा बीच तक फैला हुआ है। यह गोवा का संभवतः सबसे लम्बा तट है और सबसे शान्त समुद्री तट भी। इस तट के आस-पास कोई रिज़ॉर्ट नहीं है। यही इसके शान्त होने की एक मुख्य वजह मानी जाती है।

प्रेम से बड़ी कोई चीज़ नहीं होती। सत्कार में एक औपचारिकता का भाव समाहित रहता है, जबकि प्रेम का अटपटापन ही उसकी ख़ुशबू है। 15 से 20 जनवरी, 2024 की गोवा-यात्रा में प्रेम की उसी ख़ुशबू का एहसास हुआ। यह भी लगा कि नदियों की तरह ही मैं भी समुद्र से मिलने जा रहा हूँ। यह उत्कंठा इसलिए भी प्रबल थी कि जीवन में पहली बार समुद्र-दर्शन का मौक़ा मिला था। किसी भी चीज़ का जीवन में पहली बार घटित होना ख़ास महत्व रखता है, वह चाहे प्रेम ही क्यों न हो! उसके बाद तो हम उसके आदी हो जाते हैं। गोवा की यह पहली यात्रा भी कुछ ऐसी ही रही, जिसका निमित्त बने उदय सहाय।

इससे पहले, सालभर पूर्व गोवा जाने की योजना बनी थी मगर तब स्वास्थ्य कारणों से जाना संभव न हो सका मगर गोवा-यात्रा पर निकलने से पूर्व की कुछ घटनाओं का ज़िक्र करना चाहूँगा। बचपन की कुछ आदतें ऐसी होती हैं, जो जीवन पर्यंत पीछा करती रहती हैं। यह अमूमन हम सबके साथ होता होगा। तभी उसका आनंद है मगर मेरे साथ कई बार ऐसा भी हुआ कि ऐन मौक़े पर कोई ऐसा ज़रूरी काम आ गया कि यात्रा स्थगित करनी पड़ी। लगता है कि इस आशंका के पीछे एक बड़ा कारण मेरी जीवन-स्थितियाँ रही हैं जो



राधेश्याम तिवारी
ई-मेल : rstiwari63@gmail.com



अल्कोहल म्यूज़ियम का एक दृश्य

अनिश्चय से भरी रहीं।

एक दिन गोवा से उदय सहाय के कई फ़ोन आए। मुझे उन्हीं के पास जाना था। उनका उत्साह मुझे स्वयं से भी अधिक महसूस हुआ। मैं कृतज्ञता से भर गया। ऐसी जगह जाकर बड़ा सुखद लगता है, जहाँ कोई सहृय व्यक्ति मिलने के लिए उत्साहित हो।

मेरे मैसेंजर पर एक मैसेज आया कि जिस फ़्लाइट से मुझे गोवा जाना है वह कैंसिल है। मैंने तत्काल इसकी सूचना उदयजी को दी। उदयजी ने कहा, "रुकिए, मैं देखता हूँ ..." थोड़ी देर बाद उनका फ़ोन आया कि शाम को 6.30 बजे गोवा के लिए एक फ़्लाइट है। किराया भी लगभग उतना ही है। थोड़ी देर में उन्होंने टिकट भेज दिया। मेरा उत्साह फिर जीवित हो उठा। उदयजी सीनियर आईपीएस अधिकारी रहे हैं। जब सर्विस में थे तब भी मैंने उनमें यही आत्मीय भाव और गहरी मानवीय संवेदना महसूस की है।

15 जनवरी, 2024 को मैं क़रीब तीन घंटे पूर्व ही इंदिरा गाँधी अंतरराष्ट्रीय हवाई अड्डे पर चला गया। तभी उदयजी का फ़ोन आया। वे जानना चाह रहे थे कि जिस फ़्लाइट से मुझे जाना था वह किस एयरपोर्ट पर जाएगी? गोवा में दो अंतरराष्ट्रीय हवाई अड्डे हैं– दक्षिण में डाबोलिम और उत्तर में मोपा। डाबोलिम हालाँकि वहाँ का पुराना हवाई अड्डा है, जबकि मोपा अपेक्षाकृत नया। फिर भी परिचालन की दृष्टि से मोपा हवाई अड्डे को डाबोलिम की तुलना

में विशिष्ट लाभ प्राप्त है। डाबोलिम हवाई अड्डे पर पाँच घंटे तक नागरिक उड़ानों की अनुमति नहीं है, जबकि मोपा हवाई अड्डा चौबीसों घंटे संचालित रहता है।

निर्धारित समय से 30 मिनट विलम्ब से जहाज़ ने उड़ान भरी। कुछ समय बाद एयर होस्टेस ने घोषणा की कि जहाज़ अब मोपा एयरपोर्ट पर लेंड करने वाला है। समय देखा तो भले ही आधा घंटा विलम्ब से जहाज़ ने उड़ान भरी थी, लेकिन नियत समय पर नौ बजे उसने मोपा हवाई अड्डे पर उतार दिया। प्लेन से बाहर निकलते ही लगा कि कड़ाके की उस सर्दी को मैं दिल्ली में ही छोड़ आया हूँ। एयरपोर्ट से जैसे ही बाहर निकला तो बिल्कुल सामने ही उदयजी दिख गए। गोवा के उस सुहाने मौसम का कहना ही क्या! मोपा एयरपोर्ट से आरपुर क्षेत्र के रिवेरा पम्प के बीच की यात्रा भी कम सुखद नहीं रही। खुली-खुली सड़कें। शान्त और शुद्ध हवा। कार की खिड़की से आती हवा अच्छी लग रही थी। ऐसा लग रहा था मानो पूरे शरीर में एक नई ऊर्जा का संचार हो गया हो। उदयजी का मनोरम निवास रिवेरा पम्प में ही है। भोजन के बाद हम लोग देर रात तक बातचीत करते रहे। पता नहीं चला कि कब नींद आ गई।

16 जनवरी, 2024 को और दिनों की तरह ही समय से नींद खुल गई। उदयजी पहले से ही जगे हुए थे और कुछ लिख रहे थे। उदयजी ने शायद मेरे मनोभाव को ताड़ लिया। फ्रेश होते ही उन्होंने कहा, "चलिए कैंडोलिम बीच चलते हैं। लौटकर आते हैं तो आगे का प्रोग्राम बनेगा...।"

उदयजी के निवास से कैंडोलिम बीच कार से जाने में मुश्किल से दस मिनट लगा होगा। वहाँ पहुँच कर एक सुरक्षित जगह पर उन्होंने कार पार्किंग करते हुए कहा, "चप्पल हम लोग गाड़ी में ही उतार देते हैं। समुद्र की रेत में पैदल चलने का आनंद ही कुछ और है।" थोड़ी ही दूर चलने के बाद हम लोग समुद्र-तट पर पहुँच गए। जीवन में पहली बार समुद्र देखकर मैं रोमांचित था।

वैसे तो गोवा में छोटे-बड़े लगभग 40 बीच (तट) हैं मगर मुख्य रूप से उनमें कुछ ऐसे बीच हैं जिनका अपना ख़ास महत्व है। उन्हीं में एक कैंडोलिम तट भी है। यहाँ का दृश्य बेहद मनोरम है जो अगुआड़ा क़िले से चपोरा बीच तक फैला हुआ है। यह गोवा का संभवतः सबसे लम्बा बीच है और सबसे शान्त समुद्री तट भी। इस तट के आस-पास कोई रिज़ॉर्ट नहीं है। यही इसके शान्त होने की एक मुख्य वजह मानी जाती है। कैंडोलिम बीच पर रेत के टीलों और उन पर लगी छोटी-छोटी झाड़ियाँ इस द्वीप की मनोरमता को एक अलग रूप देते हैं। यह अपने शान्त एवं स्वच्छ वातावरण तथा प्राकृतिक सुन्दरता के लिए काफ़ी प्रसिद्ध है। यही नहीं, कैंडोलिम बीच का अपना एक ऐतिहासिक महत्व भी है। सम्मोहन विज्ञान की खोज करने वाले अब्बे फारिया का जन्म यहीं हुआ था। इसके अलावा यही वह जगह है जहाँ पहली बार गोवा



अल्कोहल म्यूज़ियम का एक और दृश्य

के लोगों ने पुर्तगालियों के ख़िलाफ़ विद्रोह किया था। इसकी एक विशेषता यह भी है कि इसका कोई निश्चित केन्द्र नहीं है। इसी बीच के किनारे अगोड़ा क़िला भी है। यहाँ हर साल, सन बर्न महोत्सव (Sun Burn Festival) भी मनाया जाता है जो युवाओं के लिए काफ़ी आकर्षक होता है।

हम लोग इसके किनारे-किनारे दूर तक चलते गए। आगे चलकर एक ऐसी ऊँची जगह आई जहाँ सीढ़ियों से हम लोग ऊपर चले गए। वहाँ बहुत से युवक-युवतियाँ सेल्फ़ी ले रहे थे। वहाँ से समुद्र की विराटता देखने लायक़ थी। उदयजी ने भी कुछ तस्वीरें लीं। वहीं पास में समुद्र के किनारे एक भव्य महल जैसा था।

कैंडोलिम बीच से क़रीब तीन घंटे बाद हम लोग घर लौटे। मकर संक्रान्ति अमूमन 14 या 15 जनवरी को ही हर साल मनाई जाती है, लेकिन चूँकि तय था कि उदयजी के साथ भी दही-चूड़ा खाना है सो हम लोगों ने 16 जनवरी को भी वह पर्व मनाया।

हम लोग तैयार होकर निकल पड़े। हालाँकि 16 जनवरी, 2024 को गोवा विश्वविद्यालय भी जाना था। वहाँ हिन्दी विभाग की प्रोफ़ेसर बृष्ला भंडारकर से मिलने का समय निश्चित हुआ था। उनसे मेरा परिचय एनसीईआरटी के एक कार्यक्रम में दिल्ली में हुआ था। बेहद सरल और भली लगीं। जीवन में मिले अच्छे लोगों को मैं बराबर सहेज कर रखना चाहता हूँ। जब

प्रोफ़ेसर बृष्ला को पता चला कि मैं गोवा आने वाला हूँ तो उन्होंने भी मिलने की इच्छा ज़ाहिर की। उदय सहाय से इस सम्बंध में ज़िक्र किया तो वे भी तैयार हो गए। सच तो यह है कि उदयजी के होने से ही बृष्लाजी से मिलना संभव भी हो सका मगर उनके यहाँ शाम छह बजे जाना था। उदयजी ने ही कहा कि, "अभी समय है तो क्यों न हम लोग इसका लाभ उठाएँ ...।" कार से क़रीब 25 किलोमीटर चलने के बाद हम लोग जहाँ पहुँचे वह गोवा का अगुआड़ा सेंट्रल जेल परिसर था। उसी परिसर में एक नया म्यूज़ियम बना है जो मांडवी नदी के तट पर स्थित है। प्रवेश शुल्क देने के बाद हम लोगों ने जैसे ही उस परिसर में प्रवेश किया तो वहाँ की प्राकृतिक छटा ने सम्मोहित कर लिया। प्रकृति के सौन्दर्य का यह वैभव अतुलनीय था। शायद ऐसा ही कोई सौन्दर्य देखकर फ़िराक गोरखपुरी ने यह शेर कहा होगा-

'तुम मुख़ातिब भी हो क़रीब भी हो
तुमको देखें कि तुमसे बात करें।'

मांडवी नदी के विराट फैलाव को देखते हुए हम लोगों ने उस म्यूज़ियम में प्रवेश किया। उसे देखते हुए लगा कि यह इंटरेक्टिव म्यूज़ियम ऐसे लोगों के लिए ख़ास है जो गोवा के इतिहास में रुचि रखते हैं। इस म्यूज़ियम को गोवा टूरिज़्म विभाग की तरफ़ से खोला गया है। जेल में क़ैदियों के तीन सेल (कमरे) को म्यूज़ियम में परिवर्तित कर दिया गया है। क़ैदियों के इन तीनों सेल के अलग-अलग नाम दिए गए हैं, जो अपनी अलग-अलग कहानी बयाँ करते हैं।



मारियो द्वारा वास्कोडिगामा का चित्रांकन

इसके पहले कमरे का नाम 'गोवा : द लैंड' है। इस कमरे में गोवा की पृष्ठभूमि, पर्यावरण आदि के बारे में भौगोलिक जानकारी दी गई है। इसके अलावा इस कमरे में मौजूद 3डी मानचित्रों की मदद से पर्यटक गोवा के बारे में समझने के साथ ही ख़ुद को कनेक्ट भी कर सकते हैं। यहाँ रखा हुआ 'द डिस्कवर गोवा कंसोल' लोगों को इस राज्य के बारे में वैसा तथ्य भी प्रस्तुत करता है, जिनके बारे में बहुत कम लोगों को पता है। इसके साथ ही स्टोरी वेडिंग मशीन राज्य से जुड़ी पुरानी कहानियों को भी बताता है।

दूसरे कमरे का नाम 'गोवा : द स्ट्रगल' है। इस कमरे में आज़ादी के लिए गोवा के संघर्षों के बारे में बताया गया है।



गोवा के अतीत को दर्शाता मारियो का चित्र

इस कमरे में मौजूद एक Gamified टाइम मशीन है, जो अपनी आज़ादी के लिए इस राज्य के संघर्षों के बारे में बताता है। इस कमरे की एक दीवार को पूरी तरह स्वतन्त्रता सेनानियों को समर्पित किया गया है।

तीसरे कमरे का नाम 'गोवा : द प्यूपल' है। यह कमरा राज्य के लोगों और उनके बारे में उनके हर एक पहलू, जीवन विज्ञान आदि के बारे में विस्तार से अध्ययन करने का मौक़ा देता है। यहाँ एक कियॉस्क है, 'वन्स अपॉन अ टाइम'। यहाँ दर्शक गोवा की प्रागैतिहासिक खोजों के बारे में जान सकते हैं। एक दूसरा कियॉस्क गोवा 2035 है, जो होलोग्राफ़िक तरीक़े से लोगों को गोवा की सांस्कृतिक झलक भी दिखाता है। स्वतन्त्रता सेनानियों के लिए बनाए कमरों में से एक में राम मनोहर लोहिया की आदम क़द मूर्ति देखी जो सफ़ेद चूने के रंग की है। स्वतन्त्रता सेनानियों की कई मूर्तियाँ अन्य कमरों में नज़र आईं। उनमें अंकित नाम स्पष्ट नहीं दिख रहे थे।

म्यूज़ियम से निकल कर हम लोग मांडवी नदी के विशाल फैलाव को देखने लगे। मांडवी नदी पश्चिमी घाट से निकलने वाली छोटी नदियों में से एक है, जो दक्षिण भारत में प्रवाहित होती है।

कर्नाटक राज्य से अपने सफ़र की शुरुआत करने वाली मांडवी कर्नाटक व गोवा के बीच में बहती है। 'जुवारी' नदी इसकी प्रमुख सहायक नदी है। 'जुवारी' के साथ ही 'मांडवी' को भी गोवा की जीवन-रेखा के रूप में जाना जाता है। कर्नाटक के विभिन्न ज़िलों में बहते हुए 'मांडवी' गोवा में प्रवेश करती है तथा अपनी यात्रा के अंत में 'जुवारी' नदी से मिलकर 'काबो अगुआड़ा' नामक स्थान पर अरब सागर में गिरकर विलीन हो जाती है। जल स्रोतों के रूप में यह गोवा की अत्यंत महत्वपूर्ण नदी है।

हम लोग अभी मांडवी नदी के तट पर ही थे कि बृष्लाजी का फ़ोन आया। उन्होंने अपने ठिकाने का लोकेशन भेजते हुए कहा कि हम लोग अब वहाँ से चल दें। हम लोग चक्कर लगाते हुए गोवा विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में पहुँच गए। वहाँ बृष्लाजी के अलावा दो युवा सहायक प्रोफ़ेसर और भी थे। उनमें एक थे दीपक वर्त और दूसरे आदित्य दयानंद सिनाय भांगी। दोनों ही



गोवा हाउस से एक म्यूज़ियम का मनोरम स्थापत्य

हिन्दी विभाग में हैं और प्रतिभावान भी। विश्वविद्यालयों का देश के निर्माण में बड़ी भूमिका है। सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने कहा था, "विश्वविद्यालय ही देश के महापुरुषों का निर्माण करने वाला कारख़ाना है तथा अध्यापक उन्हें बनाने वाले कारीगर।"

वापसी में कई ऐसे रास्ते भी मिले जहाँ दूर-दूर तक कोई दिखाई नहीं दे रहा था। वापसी में रास्ते में फिर मांडवी नदी दिखाई दी। उसमें कई जहाज़ देखकर ऐसा लग रहा था मानो मांडवी नदी में कोई शहर झिलमिला रहा हो। वे कई-कई मंज़िला थे।

रात में उनकी प्रकाश व्यवस्था ने उन्हें और भी आकर्षक बना दिया। उदयजी ने कहा कि ये 'कैसीनो' है। उन्होंने उनके बारे में विस्तार से बताया।

17 जनवरी, 2024 को गोवा की सुहानी सुबह का दर्शन हुआ। दिल्ली की ठंड की याद आई। ऐसा लगा मानो समुद्र के सामने मौसम की भी मनमानी नहीं चलती। देखा तो उदय सहाय कुछ लिखने में मशग़ूल थे। उठते ही मेरी ओर मुख़ातिब हो उन्होंने कहा, "आज आराम से भोजन के बाद दोपहर में निकलेंगे...।" उस दिन हम लोग क़रीब दो बजे के बाद घर से निकले। अपनी गाड़ी से क़रीब 25 किलोमीटर चलने के बाद एक ऐसी जगह पहुँचे जहाँ कोई शोर-शराबा नहीं था। बेहद मनोरम जगह थी वह मगर वहाँ के कलात्मक मकानों को देखकर ऐसा ज़रूर लग रहा था कि यह कोई विशेष जगह है। वहाँ जाते हुए रास्ते में पहाड़ी रास्तों जैसी पतली और घुमावदार सड़कें मिलीं। घने पेड़-पौधे और हरियाली से आच्छादित सड़क के ढलान से उतरते ही उदयजी ने इधर-उधर देखा और एक ख़ाली जगह पर कार पार्किंग की। वे भी शायद पहली बार वहाँ गए थे मगर उस जगह के बारे में वे ठीक से परिचित थे। गाड़ी से उतरते ही सड़क के किनारे एक बोर्ड पर नज़र गई। लिखा था 'हाउस ऑफ़ गोवा म्यूज़ियम'। हम लोग अंदर गए तो देखा कि करीने से कलात्मक चीज़ें लगी हुई थीं और उन पर एक ख़ास तरह के चित्र बने थे। पता चला कि ये 'मारियो मिरांडा' के चित्र हैं। अनगिनत कार्टून और क्रिएटिव चित्रों में जान डालने वाले मारियो मिरांडा उन विलक्षण कलाकारों में से एक हैं जिनकी अद्भुत कृतियों ने गोवा को एक ख़ास पहचान दी है। गोवा के अनेक पहचानों में एक मुकम्मल पहचान मारियो की कला-

कृतियाँ भी हैं।

1920 में गोवा में जन्मे इस कलाकार ने गोवा की संस्कृति और जीवन को अपने अनोखे रंगों के साथ पूरी दुनिया में पहचान दिलाई। उन्हीं की विरासत है 'हाउस ऑफ़ गोवा म्यूज़ियम'।

हालाँकि मारियो के चित्र मुझे अमूर्त नहीं लगे। उन्हें देखते हुए ऐसा लग रहा था कि ये चित्र गोवा के संघर्षपूर्ण इतिहास का सुन्दर रेखांकन है। जब भारत के विस्तृत क्षेत्र पर अंग्रेज़ों का शासन था तब गोवा, दमन और दीव पर पुर्तगाल का शासन था। हालाँकि संघर्ष 19वीं शताब्दी में ही छोटे स्तर पर आरंभ हो चुका था लेकिन 1940 से 1961 के बीच इस आंदोलन ने प्रबल रूप धारण कर लिया। भारत में जब अंग्रेज़ आए थे उससे भी पहले और अंग्रेज़ों के जाने के बाद तक गोवा पर पुर्तगालियों का ही शासन था। आज़ादी के दो दशक बाद 19 दिसम्बर, 1961 को उसे आज़ाद कराकर भारत में शामिल कर लिया गया। पुर्तगालियों ने गोवा पर सन् 1510 में क़ब्ज़ा किया था और प्राचीन भारत में स्थाई शासन की नींव रखी थी। मारियो के अनेक चित्र गोवा के संघर्षों की याद दिलाते हैं। इसके अलावा गोवा के स्थानीय जीवन और लोगों से प्रेरणा लेते हुए मारियो की कला ने वास्तविकता और कल्पना के बीच एक सीधा सम्बन्ध स्थापित किया।

म्यूज़ियम से लौटते समय रास्ते में दूर से दो चर्च दिखे। एक काफ़ी बड़ा था। उदयजी ने कहा, "ये कैथेड्र चर्च है।" थोड़ी देर वहाँ रुककर चर्च के गेट के पास से उसे देखने लगा। वहाँ खड़े सुरक्षा गार्ड ने बताया, "यह एशिया का सबसे बड़ा चर्च है।"

यह चर्च सेंट फ्रॉसिस ज़ेवियर को समर्पित किया गया है। कहा जाता है कि इस चर्च में सेंट फ्रॉसिस ज़ेवियर के अवशेष रखे हुए हैं। पुर्तगाल के राजा के कहने पर सेंट फ्रॉसिस सन् 1541 में भारत आए थे। वहीं इस चर्च के सामने ही सेंट कैथेड्रल का चर्च भी है, जिसे सन् 1562 में बनाया गया था। ऐसा माना जाता है कि पुर्तगाली शासकों ने मुस्लिम सैनिकों को हराने के बाद इस चर्च का निर्माण किया था। इस चर्च को बनाने में लगभग 80 साल लगे थे। यह चर्च पुर्तगाली गोथिक शैली में बनाया गया है। चर्च के मुख्य पूजा गृह में सोने के आवरण से ढकी एक वेदी पटल भी स्थापित है। वहाँ पर्यटकों की संख्या बहुत थी। गोवा में क़रीब 26 ऐसे चर्च हैं जो वहाँ के अतीत को दर्शाते हैं। वहाँ से हम लोग गोवा की राजधानी पणजी भी गए। वहाँ 30 मई, 1987 में केन्द्र शासित प्रदेश को विभाजित किया गया था और गोवा को भारत का 25वाँ राज्य बनाया गया। मांडवी नदी के किनारे स्थित पणजी को इस देश के सबसे आरामदायक शहरों में एक माना जाता है।

अब अंधेरा घिरने लगा था मगर उस अंधेरे का भी अपना एक सौन्दर्य था। मांडवी नदी के जहाज़ पर जगमगाती

रोशनियों की प्रतिच्छाया नदी के अपार जल में ऐसी लग रही थी मानो वे लहरों की गोद में चंचल शिशु-सी खेल रही हों। घर आते समय रास्ते में ही अगले दिन की योजना तय हो गई कि कल मंगेशी गाँव चलना है। मंगेशी गाँव का सम्बन्ध स्वर कोकिला लता मंगेशकर से भी है। मंगेशी जाने का आकर्षण इसलिए था कि वह लता दीदी का पैतृक गाँव है।

मंगेशी गोवा की राजधानी पणजी से क़रीब 21 किलोमीटर दूर है मगर उदय सहाय का (आरपुरा) निवास- जहाँ मैं ठहरा था, वहाँ से वह क़रीब 35 किलोमीटर दूर है। सुबह का सुहाना मौसम था और सड़कें लगभग ख़ाली। रास्ते में दिखने वाले गोवा के गाँव काफ़ी समृद्ध लग रहे थे। हर गाँव में पक्की सड़कें और सुन्दर मकान दिखाई दे रहे थे। उन गाँवों में एक चीज़ जो मैंने ख़ास तौर से देखी वह थी हिन्दू मन्दिरों की अधिकता।

लगभग 30 किलोमीटर दूर जाने के बाद मुख्य सड़क से एक उप सड़क निकलती है। मैंने लक्ष्य किया तो सड़क के किनारे एक बोर्ड दिखाई दिया। उस पर लिखा था- 'दीनानाथ मंगेशकर मार्ग'।

गोवा के प्रमुख दस मन्दिरों में मंगेशी मन्दिर भी एक है। मंगेशी मन्दिर की स्थापना सन् 1560 में हुई थी। सांडे के राजा ने मन्दिर परिसर के लिए यह भूमि दान दी थी। 1973 में मन्दिर के गुंबद पर स्वर्ण कलश की स्थापना की गई। इस मन्दिर की वास्तुकला गोवा के ही एक अन्य मन्दिर श्री शान्ता दुर्गा मन्दिर के शिल्प में बना है। माना जाता है कि यह मन्दिर लगभग 450 साल पुराना है।

मन्दिर के कई गुंबद और झरोखे हैं। यहाँ नंदी यानी बैल और मन्दिर के मध्य में एक सात मंज़िला दीप स्तंभ (दीप टॉवर) है। मन्दिर में एक शानदार पानी की टंकी भी है जिसे मन्दिर का सबसे पुराना हिस्सा माना जाता है। यहाँ एक विशाल सभागृह भी है, जिसमें लगभग 500 लोग खड़े हो सकते हैं।

आज यह मन्दिर जहाँ है, इससे पहले गोवा के ही कुशस्थली यानी कोर्तालिम में यह था। स्थानांतरण की वजह पुर्तगालियों का आक्रमण था। आक्रमण की वजह से ही कौंडिन्य और वत्स गोत्र के सारस्वत ब्राह्मणों ने शिवलिंग को वहाँ से जैसे-तैसे लाने में सफलता पाई। लता मंगेशकर के परिवार का इस मन्दिर से ख़ास जुड़ाव था। इतिहासकारों के अनुसार मोंगरी पहाड़ी के बीच इस मन्दिर की स्थापना हुई थी। शायद मोंगरी से ही मंगेशी और बाद में मंगेशकर हुआ होगा। गोवा विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के सहायक प्रोफ़ेसर आदित्य दयानंद सिनाय भांगी ने बताया, "मंगेशी का मूल नाम प्रियोण है। मंगेश देवस्थान कुट्ठाणी से स्थानांतरित करने के बाद यह गाँव मंगेशी कहलाया।"

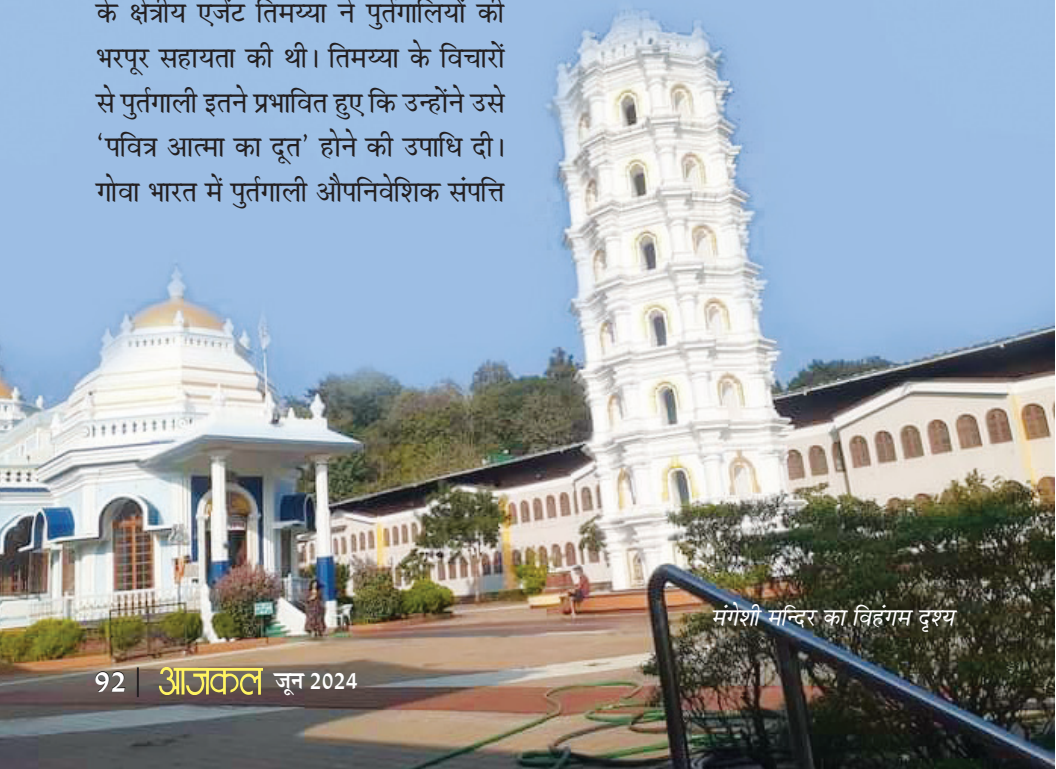
अगर गोवा के इतिहास पर विचार करें, तो इसकी स्थापना और निर्माण प्राचीन हिन्दू राज्यों द्वारा किया गया था। यह कदंब वंश की राजधानी हुआ करता था। 13वीं

शताब्दी के उत्तरार्ध में अलाउद्दीन ख़िलजी की ओर से मलिक काफ़ूर ने गोवा पर हमला किया और अपना क़ब्ज़ा जमा लिया। यह 15वीं शताब्दी में बहमनी सल्तनत का हिस्सा बन गया। उसके बाद बीजापुर के सुल्तान आदिलशाह के शासन में था। उसी समय वास्को डी गामा 1498 में भारत के कोझीकोड (कालीकट) पहुँचा।

वास्को डी गामा के वापसी के बाद पुर्तगाल ने भारत में उपनिवेश स्थापित करने के लिए एक सशस्त्र बेड़ा भेजा। सन् 1510 में पुर्तगाली एडमिरल अफोंसो डी अल्बुकर्क ने लगभग 1453 से 1515 के बीच गोवा में अनेक लड़ाइयाँ लड़ीं, जिसमें पुर्तगाली अंततः जीत गए।

गोवा के शासक आदिलशाह पर क़ब्ज़ा करने के उनके प्रयास में विजयनगर साम्राज्य के क्षेत्रीय एजेंट तिमय्या ने पुर्तगालियों की भरपूर सहायता की थी। तिमय्या के विचारों से पुर्तगाली इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने उसे 'पवित्र आत्मा का दूत' होने की उपाधि दी। गोवा भारत में पुर्तगाली औपनिवेशिक संपत्ति और एशिया के अन्य हिस्सों में गतिविधियों का केन्द्र बन गया। यह अब पुर्तगालियों के लिए प्रमुख और आकर्षक व्यापारिक केन्द्र बन गया था, जिसके ज़रिए वे पूर्व में स्थित विजयनगर साम्राज्य और बीजापुर सल्तनत के साथ व्यापार कर सकते थे। बीजापुर सल्तनत और पुर्तगाली सेना के बीच दशकों तक युद्ध चलता रहा।

एल्कोहल म्यूज़ियम में काजू की फेनी के अतीत और वर्तमान की झलक देखने को मिली। यह दुनिया का संभवतः पहला अल्कोहल म्यूज़ियम है जिसमें 5000 साल पुरानी फ़ेनी के ऐतिहासिक यात्रा को संकलित करने का प्रयास किया गया है। इस म्यूज़ियम का नाम 'ऑल अबाउट अल्कोहल' है। यह लगभग 13 हज़ार वर्ग फुट में फैला हुआ है। इसके अंदर चार



मंगेशी मन्दिर का विहंगम दृश्य

कमरों में एग्ज़ीबिशन के लिए मिट्टी के पुराने बर्तन रखे गए हैं। वहीं 16वीं शताब्दी के माप उपकरण भी हैं जो फ़ेनी देते समय इस्तेमाल किए जाते थे। इसके अलावा लकड़ी का एक प्राचीन शॉट डिस्पेस भी मौजूद है। असल में संग्रहालय शुरू करने वाले नंदन कुडचडकर प्राचीन वस्तुओं के संग्रहकर्ता भी थे।

वहाँ से घर आने के बाद हम लोगों ने भोजन के बाद थोड़ी देर आराम किया। उसके बाद उदयजी ने कहा, "चलते हैं बागा बीच।" बागा बीच उनके निवास से थोड़ी ही दूरी पर है। हम लोग दिन ढलने से पहले ही वहाँ पहुँच गए। गाड़ी पार्किंग कर समुद्र की सुनहरी रेत पर कुछ ही दूर चले कि समुद्र देव का दर्शन हुआ। गोवा में यह मेरा दूसरी बार समुद्र-दर्शन था। पहली बार सुबह और दूसरी बार शाम को समुद्र के पास गया था। सुबह की अपेक्षा शाम को लहरें कुछ ऊपर तक जाती हैं। अपेक्षाकृत अधिक ऊँची उठती लहरों के बावजूद वहाँ समुद्र के स्वाभाविक संगीत में ख़लल पैदा हो रहा था। इसका मुख्य कारण बागा बीच के किनारे सजी अनगिनत दुकानें थीं, जिनसे आती डीजे की तेज़ आवाज़ें, सुस्वादु भोजन में कंकड़ का काम कर रही थीं। वहाँ पहुँच कर मुझे यह बार-बार लगा कि गोवा प्रशासन को तत्काल डीजे बजाने पर प्रतिबन्ध लगा देना चाहिए और कड़ाई से इसका पालन होना चाहिए। प्रकृति की स्वाभाविकता को नष्ट करने वाले किसी भी कृत्य को आपराधिक श्रेणी में लिए बिना इन पर अंकुश लगाना संभव नहीं है।

बागा बीच गोवा का बहुत ही लोकप्रिय समुद्र तट है। 60 और 70 के दशक में यह स्थल पर्यटकों की नज़र में आया। इस तट की खोज हिप्पियों ने की थी। उन्होंने ही यूरोपियन पर्यटकों को यहाँ आने को प्रोत्साहित किया था।

हम लोग रेत के एक ऊँचे टीले पर जा बैठे। उदयजी की नज़रें समुद्र की विराटता को निहार रही थीं और मैं समुद्र के किनारे एक मछुआरे को देख रहा था। वह जब भी जाल फेंकता तो कुछ-न-कुछ मछलियाँ उसकी जाल में फँस ही जाती थीं। उन मछलियों को कमर में बंधे अपने थैले में डाल कर वह फिर जाल फेंकने के उपक्रम में लग जाता। उसे देखकर ऐसा लगा मानो महाकाल ने जाल फेंका हो और मछलियों की तरह हम सभी धीरे-धीरे उसमें फँसते जा रहे हों। उससे कोई भी बच नहीं सकता। किसी को किसी के लिए रोने की ज़रूरत नहीं। इस धरती पर किसी को भी स्थाई संपत्ति की तरह यह जीवन नहीं मिला है।

19 जनवरी, 2024 को मेरे गोवा प्रवास का आख़िरी दिन था। बहरहाल रात में डबोलिन एयरपोर्ट जाना भी कम रोचक नहीं था। पहाड़ी रास्तों से गुज़रते हुए हम लोग क़रीब रात्रि नौ बजे एयरपोर्ट पहुँच गए। उदय सहाय के साथ पाँच दिनों तक अपनेपन की छाया में रहने के पश्चात विदा लेते समय ऐसा लगा मानो समुद्र की लहरें मन को आलोड़ित कर रही हों। ❑



पुस्तक को क्यों पढ़ें...

समकालीन हिन्दी कविता में ग़ज़ल की शानदार उपस्थिति के लिए आश्वस्त करते हुए हमारे समय और परिवेश के सच से रूबरू कराते हुए जीवन के सरोकारों से जुड़ी ये ग़ज़लें अपने कथ्य और मुहावरे में ग़ज़ल की नई राह बनाती हैं।

बेहतर होता अगर...

आज के जटिल, बाज़ारवादी परिवेश की अन्य समस्याओं को भी इन ग़ज़लों में शामिल किया जाता तो तस्वीर और मुकम्मल रूप ले सकती थी।



पुस्तक : ज़िन्दगी आने को है (ग़ज़ल-संग्रह)
कवि-ग़ज़लकार : विनय मिश्र
प्रकाशक : लिटिल बर्ड पब्लिकेशंस, 46375/20, हरि सदन, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002
पृष्ठ : 120; **मूल्य :** 280 रुपये

सच की तलाश करती ग़ज़लें

ग़ज़ल उर्दू की लोकप्रिय विधा होने के साथ ही आज समकालीन हिन्दी कविता के विशाल परिदृश्य का अभिन्न काव्यरूप है जिसमें जीवन के अनुभव और संवेदना अपने युगीन यथार्थ के मूल्यों के साथ उपस्थित होते हैं। आठवें दशक के मध्य में कवि दुष्यंत कुमार की ग़ज़लों से हिन्दी कविता में ग़ज़ल का नया युग आरंभ हुआ और ग़ज़ल की स्वतन्त्र पहचान एक महत्वपूर्ण विधा के रूप में स्थापित हो गई जो निरंतर विकसित होती रही। समकालीन ग़ज़ल में भाषा, शिल्प और संवेदना को साधने का कौशल जिन ग़ज़लकारों में एक सार्थक दृष्टि से प्रतिबिम्बित होता है, उनमें 'विनय मिश्र' हिन्दी के चर्चित ग़ज़लकार हैं जो पिछले तीन दशकों से हिन्दी कविता, गीत, गज़ल जैसी काव्य-विधाओं के विशिष्ट रचनाकार हैं।

हिन्दी ग़ज़ल के प्रति उनका लगाव गहरा है जिसका प्रमाण उनका चौथा और नवीनतम ग़ज़ल-संग्रह 'ज़िन्दगी आने को है' शीर्षक से प्रकाशित हुआ है। इस पुस्तक में संग्रहीत ग़ज़लें अपने ठोस कथ्य से, अपनी मौलिक शैली के अंदाज़-ए-बयाँ से मनुष्य और जीवन के सरोकारों से संवाद का सम्बन्ध बनाते हुए निराशा के अंधकार में भटकाती नहीं, बल्कि उम्मीद की किरण को आलोकित करते हुए पूरी सजगता से अपने समय के सच को रेखांकित करती हैं। इस संग्रह में संकलित लगभग एक सौ बीस ग़ज़लें जीवन को अपनी दृष्टि के केन्द्र में रखकर जहाँ एक तरफ़ संघर्ष और नई संभावनाओं की प्रतीक बनकर उभरती हैं तो समकालीन ग़ज़ल में बदलते हुए

यथार्थ की नई तहों को देखने की वैचारिक अर्थवत्ता भी प्रदान करती हैं।

इस संग्रह की शीर्षक ग़ज़ल समग्र पुस्तक की प्रतिनिधि ग़ज़ल कही जा सकती है जो इस ख़ूबसूरत विधा की गहराई में मानवीय संवेदनाओं की संजीदा अभिव्यक्ति का प्रतीक बनकर प्रस्तुत होती है–

'मन का ये मौसम बरस जाने को है
ये सुना है ज़िन्दगी आने को है
वक़्त ही ऐसा पड़ा है सामने
हौसला ही राह दिखलाने को है
मेरे भीतर की ये दुनिया आजकल
चाहतों के पंख फैलाने को है
चाहिए उम्मीद का पानी उसे
वो ख़ुशी की बात मुरझाने को है
जिस अँधेरे से भरा है मेरा घर
क्या ख़बर उसकी भी वीराने को है।'

इन ग़ज़लों में जीवन का अन्वेषण है और तमाम निराशा, निष्क्रियता, शोषण, दुःख और अंधकार के मनुष्य विरोधी वातावरण में जीवन की संभावना के पुनः अंकुरण और नए विकल्पों की खोज का साहस भी जो इन ग़ज़लों को ज़िन्दगी के मौलिक रंग प्रदान करता है। अपने समय की चुनौतियों से जूझते हुए इन ग़ज़लों की आँखों में स्वप्न, प्रतिरोध, आक्रोश की उपस्थिति भी है जो व्यक्ति की आंतरिक बेचैनी का स्वर बनकर समाज, संस्कृति, राजनीति, इतिहास और परम्परा के साथ ही अपने समूचे कालबोध के जटिल प्रपंचों से संवाद करती प्रतीत होती हैं-

'फड़फड़ाते हैं पिंजरे में उड़ते नहीं
हौसले इन परिंदों के टूटे नहीं
जितना है शोरग़ुल जितनी चर्चाएँ हैं
ज़िन्दगी उतनी क्यों मेरे हिस्से नहीं
इस जगह कुछ ग़रीबों की थीं बस्तियाँ
यह इमारत तो थी इसके पहले नहीं
जो सियासत कहे उस पे कैसे चलें
आदमी हैं मशीनों के पुर्ज़े नहीं
जो भी है सामने मेरी आँखों के है
और कुछ भी यहाँ मेरे पीछे नहीं।'

ग़ज़ल के विन्यास में जैसे सभी मिसरे और शेर मिलकर एक स्वतन्त्र ग़ज़ल की निर्मिति संभव करते हैं, वैसे ही इस संग्रह की सभी ग़ज़लें परस्पर जुड़कर हमारे समय और समाज के सच का एक व्यापक वृत्तांत रचती हैं। ये ग़ज़लें कठिन और निर्मम समय के अँधेरे में ख़ुशियों की किरण के उजास की खोज भी करतीं हैं तो पराजय की स्थिति में आशंकाओं के विरुद्ध सपनों की दिशा में आगे बढ़कर मनुष्यता की विजय के प्रति आश्वस्ति से भरी हुई भी दिखाई देती हैं। यह समकालीन ग़ज़लकार के रूप में विनयजी की रचना-दृष्टि की विशेषता है-

'पाँव के नीचे दबे हुए सूखे पत्ते
और आँखों में नज़र आए हरे पत्ते
दो घड़ी आओ इधर भी हम भी अपने हैं
राग जीवन का सुरों में गा रहे पत्ते।'

इन ग़ज़लों की भावभूमि वैविध्यपूर्ण है और भाषा शिल्प में शब्द-संयोजन का अनूठा सौन्दर्य जिसमें मौन की भंगिमा का स्पेस भी है तो लय की सहज गति भी जो इन्हें पाठकों के लिए संप्रेषणीय बनाती है।

यह ग़ज़ल-संग्रह समकालीन हिन्दी कविता में ग़ज़ल की अनिवार्यता और उपस्थिति के लिए आश्वस्त करते हुए अपने समय और परिवेश के सच, यथार्थ और जीवन के सरोकारों से सम्बन्ध रखते हुए अपने कथ्य और मुहावरे में ग़ज़ल की नई राह विकसित करता है।

समीक्षक : मीना बुद्धिराजा
ई-मेल : meenabudhiraja67@gmail.com



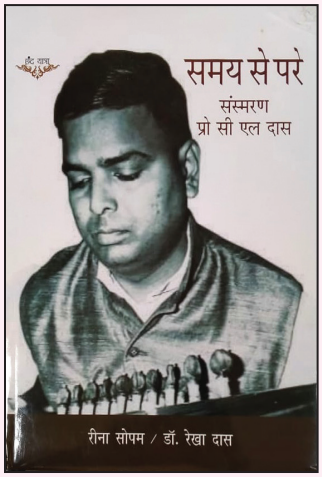
पटना की सांस्कृतिक यात्रा का दस्तावेज़

पुस्तक को क्यों पढ़ें...

भारत रत्न पण्डित रवि शंकर और भीमसेन जोशी से लेकर ग़ज़ल साम्राज्ञी बेगम अख़्तर, लोक गायिका विंध्य वासिनी देवी और पाकिस्तान जा बसी ख़्याल गायिका रोशन आरा बेगम की यादें हैं इस पुस्तक में।

बेहतर होता अगर...

इस पुस्तक में मिथिला की एक बड़ी सांस्कृतिक संस्था चेतना समिति तथा पटना में रहे साउथ इंडियन कल्चरल एसोसिएशन की गतिविधियों पर भी चर्चा होती तो बेहतर होता।



पुस्तक : समय से परे (संस्मरण)
सम्पादन : रीना सोपम, रेखा दास
प्रकाशक : कनिष्क पब्लिशिंग हाउस, 4695/5-21, ई, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002
पृष्ठ : 144; **मूल्य :** 850 रुपये (हार्डबाउंड)

लब्धप्रतिष्ठ सरोद वादक तथा संगीत इतिहासकार, सी.एल. दास द्वारा बिहार, विशेष रूप से पटना की सांस्कृतिक यात्रा पर लिखित पुस्तक 'समय से परे स्वर छंदों की यात्रा' नाम से प्रकाशित हुई है।

दरअसल संगीत विद्वान सी.एल. दास के पटना, बल्कि पूरे बिहार के सांस्कृतिक परिदृश्य और गतिविधियों से जुड़ी स्मृतियों का एक संकलन है। सी.एल. दास एक बहुआयामी व्यक्तित्व थे। देश की आज़ादी के बाद के वर्षों में बिहार में जो सांस्कृतिक परिदृश्य था और प्रदेश में संगीत परम्परा तथा संगीतकारों की जो दशा थी, उसे एक दिशा देने में उन्होंने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी।

श्री दास अंग्रेज़ी साहित्य के अध्यापक रहे, लेकिन उनके व्यक्तित्व का विस्तार कई क्षेत्रों में था। वे सरोद वादक, पद्म विभूषण उस्ताद अल्लाउद्दीन ख़ाँ के शिष्य थे। प्रो. दास के बहाने ही मैहर घराने की संगीत परम्परा बिहार आई।

अपने कॉलेज के दिनों से ही उन्होंने कला-लेखन की शुरुआत कर दी थी। हाथरस, उत्तर प्रदेश से प्रकाशित 'संगीत' पत्रिका में उन्होंने 1950 के दशक में ही आकाशवाणी के अखिल भारतीय संगीत समारोह की समीक्षा तथा बिहार तथा देश के अन्य संगीतकारों पर फ़ीचर लिखना शुरू कर दिया था। 1960 के दशक

से उन्होंने बिहार के समाचारपत्रों में कला-लेखन की शुरुआत की।

वे एक कुशल संगीत समारोह आयोजक थे और एक उदार मन गुरु भी। इन विविध भूमिकाओं को जीते-निभाते, सी.एल. दास ने बिहार के अन्य शहरों में शास्त्रीय संगीत परम्परा और संगीतकारों की जो परिस्थिति देखी और यहाँ के सांस्कृतिक गतिविधियों को जैसा उन्होंने देखा-सुना और जिया, उसे उसी रूप में पाठकों से साझा किया है, इस पुस्तक में।

वैसे इस पूरे संकलन का नायक मूलतः पटना का है जिसके इर्द-गिर्द घूमती है शास्त्रीय संगीत के दिग्गज कलाकारों की गतिविधियाँ। यहाँ ग़ज़ल साम्राज्ञी बेगम अख़्तर की पटना और पटनावासियों से जुड़ी बहुत ही रोचक घटनाएँ भी हैं और दिग्गज ख़्याल गायिका रोशन आरा बेगम के पटना सिटी के कचौरी गली में बिताए बचपन की बातें भी।

पण्डित रवि शंकर के पटना में बिताए दिनों की यादें भी हैं बल्कि एक पूरा अध्याय ही है पटना से उनके प्रेम-लगाव पर।

पद्म विभूषण उस्ताद अल्लाउद्दीन ख़ाँ के पटना प्रवास की विस्तृत चर्चा है। उन पर आधारित अध्याय में कई दुर्लभ तस्वीरें भी हैं। बिहार के ध्रुपद गायक पण्डित रामचतुर मालिक से लेकर भारत रत्न पण्डित भीमसेन जोशी की पटना से जुड़ी यादें भी हैं।

जिन्होंने पटना में होने वाले दशहरा संगीत समारोह की चर्चा देखी या अपने बुज़ुर्गों से सुनी है, उनके लिए काफ़ी रोचक होगी यह पुस्तक।

आरंभ के कुछ अध्याय में दरभंगा राज के अनन्य संगीत प्रेम और कला संरक्षण पर भी लम्बी चर्चा है।

इस पुस्तक में देश के दिग्गज कलाकारों और संगीत समारोहों की दुर्लभ तस्वीरें हैं। लगभग सभी तस्वीरें सी.एल. दास द्वारा ली गई हैं। वे एक शौकिया फ़ोटोग्राफर थे लेकिन उनके द्वारा ली गई तस्वीरें आज आज़ादी के बाद के वर्षों में बिहार में सांस्कृतिक परिदृश्य से रूबरू कराने का एक सशक्त माध्यम हैं।

पुस्तक 'समय से परे स्वर छंदों की यात्रा' बिहार की सांस्कृतिक यात्रा का दस्तावेज़ीकरण है। दरअसल बिहार के अमूर्त विरासत के जिन पहलुओं की चर्चा यहाँ की गई है, वह कहीं और शायद ही लिखित रूप में उपलब्ध हो। बहुत कम लिखा गया है उन विषयों और व्यक्तित्व पर। इस पुस्तक के माध्यम से सी.एल. दास ने बिहार की इस सांस्कृतिक धरोहर को सम्भाला और सहेज कर महत्वपूर्ण काम किया है। ❑

समीक्षक : दिनेश कुमार दास

ई-मेल : dkdasnirala@gmail.com

'पुस्तक आजकल' में समीक्षा के प्रकाशन हेतु पुस्तक की दो प्रतियाँ 'आजकल' कार्यालय के पते पर भेजना अनिवार्य है। पाठकों के समक्ष निष्पक्ष मूल्यांकन प्रस्तुत करने के उद्देश्य से समीक्षा के लिए समीक्षकों को पुस्तक आबंटन 'आजकल टीम' द्वारा ही किया जाएगा।

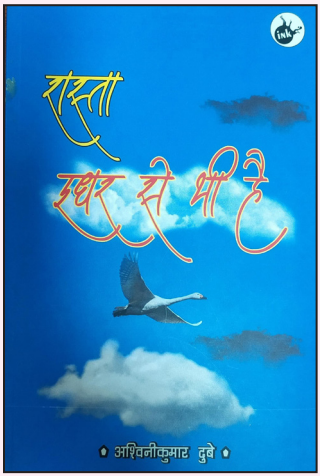


पुस्तक को क्यों पढ़ें...

अपनी जड़ों की ओर लौटने और फिर से अपनी संस्कृति को जीने की नायक की कोशिश ने इस उपन्यास को बेहद दिलचस्प और प्रासंगिक बना दिया है।

बेहतर होता अगर...

इसमें पारिवारिक वर्णन ज़्यादा है। यदि इन विवरणों को कुछ कम किया जाता तो पुस्तक और ज़्यादा पठनीय और रोचक बन जाती।



पुस्तक : रास्ता इधर से भी है (उपन्यास)
कवि : अश्विनीकुमार दुबे
प्रकाशक : इंक पब्लिकेशन, 333/1, 1के, नया पुरा, करेली, प्रयागराज-211016 (उत्तर प्रदेश)
पृष्ठ : 168; **मूल्य :** 250 रुपये

'टेक्नो वर्ल्ड' में शाश्वत मूल्यों की कहानी

लैटिन अमरीका में कहावत है "इंसान चाहे कहीं भी चला जाए, आख़िर में वह अपने घर ही लौटता है।"

पुस्तक मेले के बाद इधर कुछ किताबों को पलटना-पढ़ना शुरू किया तो अश्विनीकुमार दुबे के नव-प्रकाशित उपन्यास 'रास्ता इधर से भी है' पर नज़र पड़ी और उसे पढ़ने के लिए उठा लिया। एक बार इस उपन्यास को पढ़ना शुरू किया तो पढ़ता ही चला गया। इसकी वजह यह नहीं है कि इस उपन्यास के ज़रिए लेखक ने किसी असाधारण कहानी या घटना का वर्णन किया है। इस उपन्यास की मुख्य विशेषता यह है कि इसकी कहानी का नायक आधुनिक टेक्नो वर्ल्ड में जमने-रमने के बाद भी अपनी जड़ों और मूल्यों को नहीं भूलता। वह अपनी उम्र के अपराह्न में उसी जीवन की ओर लौटने और उसमें बसने की कोशिश करता दिखाई देता है, जिसे वह कभी पुरातन कहकर छोड़ आया था।

उपन्यास की कहानी का नायक बेरोज़गार नौजवान हरिशंकर शर्मा है। अन्य नौजवानों की तरह हरिशंकर भी देश में बढ़ती बेरोज़गारी और नौकरियों में होने वाले भाई-भतीजावाद को लेकर परेशान रहता है। स्कूल के दिनों में जब उसके पिता उसे पढ़ाई करने के लिए प्रोत्साहित करते हुए इन सब बुराइयों के प्रति आगाह किया करते थे तो वह अपने पिता की उन बातों को सुनकर चिढ़ जाया करता था। वह अपने पिता को उनकी नासमझी के ताने देते हुए उन्हें

बताता कि उनकी कही हुई बातों का अब कोई मूल्य नहीं रहा है। आज हर कोई रिश्वत लेकर काम करता है और सिफ़ारिशों के बल पर ही नौकरियाँ मिलती हैं।

पिता-पुत्र के बीच के संवाद की इस कड़ी में हमें जो समस्या दिखाई पड़ती है, वह आज की नहीं, बल्कि हमेशा से मौजूद रही है। इसी समस्या का उल्लेख करते हुए सुप्रसिद्ध व्यंग्यकार हरिशंकर परसाई ने एक बार कहा था, "नौजवान बेटे को ईमानदार बाप निकम्मा लगता है।"

लेखक भी इस मौक़े पर व्यंग्य करने का मौक़ा नहीं चूकता। वह वृद्ध पिता और तेज़तर्रार पुत्र के इस जेनरेशन-गैप पर क़लम चलाते हुए लिखता है, "नई पीढ़ी ऐसे ही अपने बाप को नालायक समझती है।"

हालाँकि, इस सबके बावजूद, किसी चमत्कार की तरह, बिना किसी सिफ़ारिश के एक दिन हरिशंकर को सरकारी नौकरी मिल जाती है। नौकरी लग जाने के बाद उसके माता-पिता उसकी शादी कर देते हैं। शादी के बाद नौकरी में तरक्क़ी करता हुआ हरिशंकर शहर में आ बसता है। वहाँ वह अपना मकान बनाता है, बच्चों को पढ़ाता-लिखाता है और अपनी एक अलग दुनिया बसाता है। वही दुनिया है, जिसे बसाने का सपना हमारे समय का हर नौजवान देखता है मगर जब तक उसे इस अलग बसाई स्वप्नीली दुनिया की क्षण-भंगुरता का पता चलता है, तब तक बहुत देर हो चुकी होती है।

अपने रिटायरमेंट के बाद हरिशंकर को भी जब इस क्षणभंगुरता का सामना करना पड़ता है तो वह वापस अपनी जड़ों की ओर लौटने की कोशिश करता है। यहाँ अच्छी बात यह है कि इन कोशिशों में उसकी उम्मीदों के विपरीत उसकी पत्नी और बच्चे भी उसका साथ देते दिखाई देते हैं। वे लोग भी हर प्रकार की सुख-सुविधाओं से सम्पन्न शहर की अपनी भरी-पूरी ज़िन्दगी छोड़कर वापस गाँव लौट जाते हैं। जहाँ आज़ादी के इतने सालों बाद भी बिजली तक नहीं पहुँची है मगर इस पर भी वे लोग ख़ुश हैं, क्योंकि आख़िर में वे अपने घर लौट आते हैं।

हरिशंकर घर लौटने के बाद अपने माता-पिता से मिलकर बहुत ख़ुश होता है। वह अपने पिता के साथ खेतों में काम करने का लक्ष्य तय करता है। अपने बेटे और पोते-पोतियों के लौटने से हरिशंकर के पिता भी ख़ुश होते हैं, मगर इसके साथ ही उनके मन में कुछ शंकाएँ भी पैदा होती हैं। हालाँकि, काफ़ी विचार करने और अपने बेटे-बहू तथा पोते-पोतियों का व्यवहार देखने के बाद वह इन शंकाओं पर जल्दी ही क़ाबू पा लेते हैं और अपने पोते के जन्मदिन पर उसे एक ट्रैक्टर उपहार में देते हैं, जिससे वह खेती में अपने पिता की मदद कर सके।

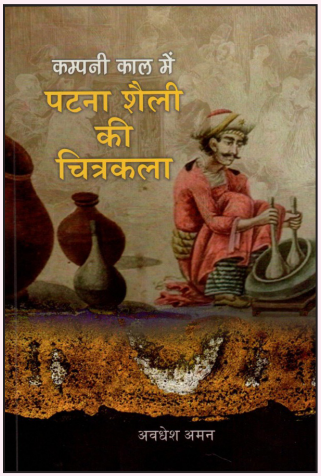
यह एक साधारण कहानी है। बेहतर ज़िन्दगी की उम्मीद में संघर्ष करते नौजवान और उनमें से कुछ के कामयाब हो जाने की इस तरह की कहानियाँ हमारे समाज में यत्र-तत्र बिखरी पड़ी हैं मगर इस कहानी की असाधारणता यही है कि इन सबके विपरीत इस कहानी का नायक वापस अपनी जड़ों की ओर लौटता है और फिर से उन शाश्वत मूल्यों को जीने और संजोने की कोशिश करता है, जो हमारी भारतीय संस्कृति के प्राण हैं। ❑

समीक्षक : शहादत

ई-मेल : 786shahadatkhan@gmail.com

प्रकाशन विभाग की पुस्तकें

कम्पनी काल में पटना शैली की चित्रकला



पुस्तक : कम्पनी काल में पटना शैली की चित्रकला

लेखक : अवधेश अमन

पृष्ठ : 118; **मूल्य :** 325 रुपये

पुस्तकें ख़रीदने और सूची देखने के लिए प्रकाशन विभाग की वेबसाइट publicationsdivision.nic.in देखें। वेबसाइट पर जाने के लिए QR कोड स्कैन करें।

भारतीय चित्रकला का इतिहास अत्यंत प्राचीन एवं समृद्ध रहा है। भारतीय चित्रकला में विभिन्न शैलियाँ हैं जिनमें से कुछ हैं- जैन चित्रकला, पाल चित्रकला, अपभ्रंश चित्रकला, मुग़ल चित्रकला, पटना चित्रकला, नाथद्वार चित्रकला इत्यादि। पुस्तक 'कम्पनी काल में पटना शैली की चित्रकला' में पटना चित्रकला से सम्बन्धित आयामों पर चर्चा की गई है।

पुस्तक को 33 अध्यायों में बाँटा गया है। प्रथम अध्याय 'उद्भव एवं विकास' में पटना शैली की शुरुआत एवं यात्रा की चर्चा की गई है। अगले कुछ अध्यायों में इस चित्रकला के ऐतिहासिक सन्दर्भ एवं पृष्ठभूमि, व्यापारिक लाभ, शैली में प्रयुक्त होने वाली चित्रांकन सामग्रियाँ आदि पर चर्चा की गई है। इसी कड़ी में आगे बढ़ते हुए लेखक ने पटना शैली के 17 चित्रकारों के कार्यों को कलमबद्ध किया है। इस पुस्तक का हर अध्याय मानव सभ्यता के विकास के अनुरूप चित्रकला की शैली में आए उतार-चढ़ाव की कहानी कहने के साथ-साथ गुणवत्ता के प्रतिष्ठा से परिचय भी कराता है।

पटना शैली या कम्पनी शैली भारतीय कलाकारों द्वारा भारत में बनाए गए चित्रों की एक मिश्रित इंडो-यूरोपीय शैली को दर्शाता है। इस शैली के चित्रकारों को अधिक प्राकृतिक दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता होती थी।

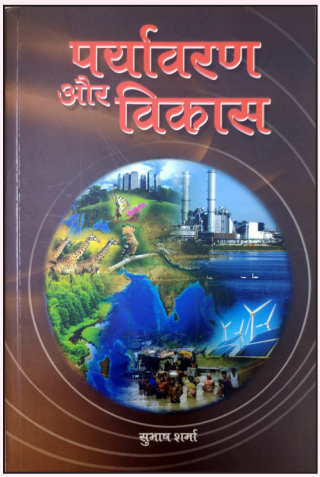
लगभग 200 वर्षों की पटना कलम की ऐतिहासिक चित्रकला के अध्ययन हेतु ज़्यादा स्रोत उपलब्ध नहीं हैं। हिन्दी भाषा इतनी समृद्ध होते हुए भी कला इतिहास सन्दर्भ पुस्तकों की कमी महसूस करते हुए लेखक अवधेश अमन ने प्राचीन भारतीय चित्रकला की 'पटना शैली' से सम्बन्धित जानकारी को एकत्रित कर पुस्तकाकार में पाठकों के लिए प्रस्तुत किया है।

कला से सम्बन्धित एक महत्वपूर्ण विषय पर जानकारी और तथ्य लेकर एक छोटी-सी पुस्तक में दुनियाभर के पाठकों के साथ साझा करना लेखक के विचारों, प्रयास और अनुभव का परिणाम है। पुस्तक में जटिल विषयों और घटनाओं को बहुत सारे विवरणों और विचारों के साथ आसान तरीके से समझाया गया है। ❑

*(समीक्षक : **प्रियंका सिंह**)*

प्रकाशन विभाग की पुस्तकें

पर्यावरण और विकास



पुस्तक : पर्यावरण और विकास
लेखक : सुभाष शर्मा
पृष्ठ : 190; **मूल्य :** 215 रुपये

पुस्तकें ख़रीदने और सूची देखने के लिए प्रकाशन विभाग की वेबसाइट publicationsdivision.nic.in देखें। वेबसाइट पर जाने के लिए QR कोड स्कैन करें।

इस पूरे ब्रह्मांड की अवधारणा और अस्तित्व के मूल में विकास है। जब हम विकास की बात करते हैं तो वह सिर्फ़ जन्म और मृत्यु के सन्दर्भ में नहीं है। पशु-पक्षियों एवं वनस्पतियों के मामले में तो यह जीवन से मृत्यु तक की यात्रा है, परन्तु मनुष्य के सन्दर्भ में जीवन से मृत्यु के बीच का स्तर कैसा रहा, यही मुख्य बिन्दु होता है। यथा रोगमुक्त स्वस्थ सुशिक्षित, भोजन-वसन से परिपूर्ण जीवन है अथवा अशिक्षित, रोगी, कुपोषित और उपेक्षित। अब विकास की दिशा व दशा कैसी है, यह हमारे आस-पास के वातावरण एवं पर्यावरण से निर्धारित होता है। विकास का पर्यावरण से बहुत गहरा सम्बन्ध है। यदि आस-पास सब अच्छा है, स्वास्थ्यकर है तो विकास भी अच्छा होगा। जैसे नागासाकी, हिरोशिमा, पर्ल हार्बर या फिर अपने ही देश में भोपाल गैस कांड के बाद की स्थिति देखें, चूँकि वहाँ आस-पास अप्राकृतिक तत्त्वों की अधिकता सीमा से परे हो गई, अतः जीवन का विकास भी गड़बड़ा गया। आस-पास का वातावरण, पर्यावरण पर बड़ी मात्रा में प्रभाव डालता है जिसके कारण ऊपर वर्णित अनेक कुप्रभाव उपजने लगते हैं और विकास क्रम को बाधित एवं खण्डित करते हैं।

ऐसे अनेक तथ्यों के सक्षम विवेचन, तमाम पर्यावरणीय कारकों एवं कारणों की पड़ताल, पर्यावरण के संकट, उन पर हुई महत्वपूर्ण बैठकें, अंतरराष्ट्रीय सम्मेलनों एवं राष्ट्रीय स्तर पर पर्यावरण के अनेक आयामों, उनसे जुड़ी समस्याओं, कारणों एवं निदान पर एक सूक्ष्म दृष्टि डालती है प्रकाशन विभाग की पुस्तक 'पर्यावरण और विकास'। लेखक ने अथक प्रयासों द्वारा इस पुस्तक के माध्यम से सभी आयु वर्ग के पाठकों में पर्यावरण जागरूकता एवं विकास सक्षमता का आह्वान किया है।

दो खण्डों और 16 अध्यायों की यह पुस्तक वैश्विक स्तर पर पर्यावरण की समझ, विकास की अवधारणा तथा इन दोनों के आपसी सम्बन्ध एवं संतुलन की बात करती है। पर्याप्त शोध एवं सांख्यिकी सूचनाओं से परिपूर्ण यह पुस्तक, वर्तमान में, जबकि विकास एवं पर्यावरण बच्चे-बड़े सभी के लिए चर्चा का विषय बन चुके हैं, अत्यधिक महत्वपूर्ण हो जाती है। कारण कि इसमें प्रदत्त सभी जानकारियों के मूल स्रोतों का भी विवरण है ताकि शिक्षार्थी एवं शोधार्थी इन्हें सत्यापित कर सकें और उनका यथोचित सदुपयोग भी। ❑

*(समीक्षक : **फरहत परवीन**)*

प्रकाशन विभाग की पुस्तकें
(अंतरराष्ट्रीय योग दिवस 21 जून पर विशेष)

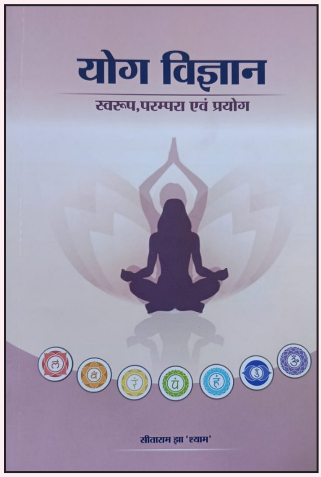
योग विज्ञान : स्वरूप, परम्परा एवं प्रयोग

'योग', यह शब्द जब भी कानों में पड़ता है, तो मन में सहज ही अलग-अलग आसनों व मुद्राओं को धारण किए लोगों की छवियाँ उभरने लगती हैं। ऐसा क्यों होता है? क्योंकि एक सामान्य जीवनचर्या वाला व्यक्ति अपने आस-पास योग को इसी रूप में देखता है लेकिन 'योग विज्ञान' की दृष्टि से देखें तो मुद्राएँ व आसन 'योग' का एक अंग मात्र हैं, जो योग के प्रायोगिक पक्ष को दर्शाते हैं। इस प्रायोगिक पक्ष से परे भी योग का एक विशद संसार है, जो आत्मसाक्षात्कार कराता है, मन पर नियंत्रण सिखाता है और परहित चिन्तन में सुख की अनुभूति कराता है। योग का मूल उद्देश्य ही है आत्मसाक्षात्कार से परमात्मसाक्षात्कार। यानी स्वयं में ईश्वरीय चेतना का वास मानते हुए उस चेतना की अनुभूति करना।

योग पर केन्द्रित प्रकाशन विभाग की नवीनतम प्रस्तुति 'योग विज्ञान : स्वरूप, परम्परा एवं प्रयोग' अवधारणा के स्तर पर योग के सैद्धान्तिक और आध्यात्मिक पक्ष से परिचय कराती है। वरिष्ठ साहित्यकार सीताराम झा 'श्याम' की यह पुस्तक योग के उद्भव, विकास, प्राचीन शास्त्रों में उसके स्वरूप वर्णन और सामाजिक समस्याओं के निदान में उसकी उपयोगिता पर प्रकाश डालती है। विषयवस्तु के स्तर पर यह पुस्तक योगवाशिष्ठ, योगसूत्र, श्रीमद्भगवद्गीता, मनुस्मृति, महाभारत, वेदों, पुराणों, आरण्यकों और उपनिषदों आदि प्राचीन ग्रंथों में वर्णित योग की अवधारणा और स्वरूप का परिचय देती है। साथ ही 'अष्टांग योग' यानी यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि का महत्व बताते हुए उन्हें साधने का मार्ग भी दिखाती है। पुस्तक मूल रूप से आसनों और प्राणायाम द्वारा सरलता से ध्यान की अवस्था में जाने, चित्त को स्थिर बनाने और सत्कार्यों में आनंद पाने की न सिर्फ़ प्रेरणा देती है, बल्कि शास्त्रीय ग्रन्थों के विस्तृत सन्दर्भों व उद्धरणों के सहारे तन-मन को साधने की प्रायोगिक विधियाँ भी बताती है।

इस पुस्तक में कुल आठ पाठ हैं, जो क्रमशः योग की परम्परा, उसके स्वरूप, प्रकार, प्रयोग, भौतिक जीवन में लाभ और विश्वशान्ति में उपयोग पर केन्द्रित हैं। समग्रता में यह पुस्तक लेखक के विशद अध्ययन, गहन अभ्यास, दीर्घ अनुभव और शोध का प्रतिफल है। पुस्तक की साज-सज्जा आकर्षक है। ❑

*(समीक्षक : **अभिषेक चतुर्वेदी**)*

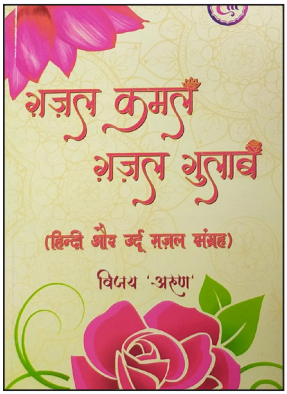


पुस्तक : योग विज्ञान - स्वरूप, परम्परा एवं प्रयोग
लेखक : सीताराम झा 'श्याम'
पृष्ठ : 144; **मूल्य :** 225 रुपये

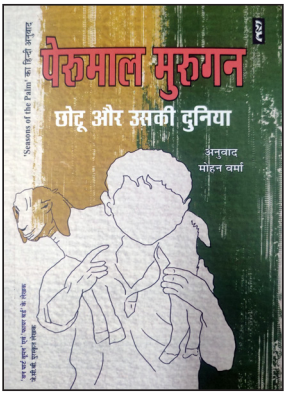
पुस्तकें ख़रीदने और सूची देखने के लिए प्रकाशन विभाग की वेबसाइट publicationsdivision.nic.in देखें। वेबसाइट पर जाने के लिए QR कोड स्कैन करें।

पुस्तक आजकल

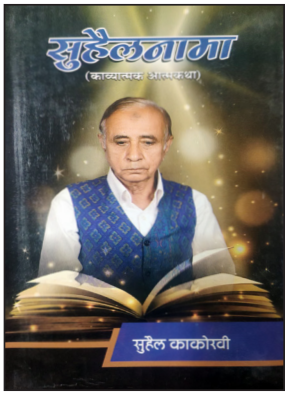
पुस्तकें मिलीं



पुस्तक : ग़ज़ल कमल ग़ज़ल गुलाब
ग़ज़लकार : विजय 'अरुण'
प्रकाशक : अद्भिक पब्लिकेशन प्रा. लि., 41-हसनपुर गाँव, आई.पी. एक्सटेंशन, पटपड़गंज, दिल्ली-110092
पृष्ठ : 208; **मूल्य :** 300 रुपये



पुस्तक : छोटू और उसकी दुनिया
लेखक : पेरुमाल मुरुगन
अनुवाद : मोहन वर्मा
प्रकाशक : सेतु प्रकाशन प्रा.लि., सी-21 सेक्टर-65, नोएडा-201301 (उत्तर प्रदेश)
पृष्ठ : 414; **मूल्य :** 375 रुपये



पुस्तक : सुहैलनामा (काव्यात्मक आत्मकथा)
लेखक : सुहैल काकोरवी
प्रकाशक : सावी पब्लिकेशन, एलजीएफ़-6, बंशीधर कॉम्प्लैक्स, डालीगंज, लखनऊ-226020 (उत्तर प्रदेश)
पृष्ठ : 292; **मूल्य :** 530 (हार्डबाउंड)

पुस्तक : रेत पर बैठा सूरज (कविता-संग्रह)
कवि : दिनेश कुमार शर्मा 'कौत्स'
प्रकाशक : शुभदा बुक्स, बी-140/एस-2, शालीमार गार्डन एक्सटेंशन-2, साहिबाबाद-201005 (उत्तर प्रदेश)
पृष्ठ : 168; **मूल्य :** 240 रुपये

पुस्तक : ऐ वहशते-दिल क्या करूँ (संस्मरणात्मक उपन्यास)
लेखिका : पारुल सिंह
प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, पी.सी. लैब, सम्राट कॉम्प्लैक्स (बेसमेंट), बस स्टैण्ड, सीहोर-466001 (मध्य प्रदेश)
पृष्ठ : 234; **मूल्य :** 300 रुपये

पुस्तक : अग्निकाल (सल्तनतकालीन सिपहसालार मलिक काफ़ूर की कहानी)
लेखक : युगल जोशी
प्रकाशक : पेंगुइन रैंडम हाउस इंडिया प्रा.लि., चौथी मंज़िल, कैपिटल टॉवर-1, एमजी रोड, गुरुग्राम-122002 (हरियाणा)
पृष्ठ : 342; **मूल्य :** 499 रुपये

पुस्तक : जंग जारी है (उपन्यास)
लेखक : अहमद सग़ीर
प्रकाशक : अनुज्ञा बुक्स, 1/10206, शिव मन्दिर गली, वेस्ट गोरख पार्क, शाहदरा, दिल्ली-110032
पृष्ठ : 108; **मूल्य :** 160 रुपये

पुस्तक : दिवास्वप्न (कहानी-संग्रह)
लेखक : हरनाम शर्मा
प्रकाशक : एस.पी. कौशिक इंटरप्राइज़ेज़, ए-49, गली नं. 6, जगतपुरी एक्सटेंशन, दिल्ली-110093
पृष्ठ : 110; **मूल्य :** 350 रुपये (हार्डबाउंड)

पुस्तक : मजरुह : एक पुनर्लोकन
लेखक : सुहैल काकोरवी
प्रकाशक : सावी पब्लिकेशन, एलजीएफ़ 6, बंशीधर कॉम्प्लैक्स, डाली गंज, लखनऊ-226020 (उत्तर प्रदेश)
पृष्ठ : 130; **मूल्य :** 200 रुपये



साहित्य अकादमी ने 11 मई 2024 को प्रतिष्ठित अंग्रेज़ी लेखक और विद्वान श्री रस्किन बॉन्ड को अपना सर्वोच्च साहित्यिक सम्मान, साहित्य अकादमी फ़ेलोशिप प्रदान किया। उनको सम्मानित करते हुए साहित्य अकादमी के अध्यक्ष श्री माधव कौशिक और सचिव श्री के. श्रीनिवासराव

- **सृजनात्मक भूमि का काम करती हैं घरेलू साहित्यिक गोष्ठियाँ**

'युगानुगूँज' के तत्वधान में, 'पटना काव्य गोष्ठी' का आयोजन हुआ। 'युगानुगूँज ग्रुप' एक साहित्यिक संस्था है जो हिन्दी, उर्दू और अंग्रेज़ी साहित्य को बढ़ावा देती है। नए साहित्यकारों को मंच देना इस संस्था का ख़ास मक़सद है। यह संस्था देशव्यापी तो है ही, प्रवासी भारतीय को जोड़कर विदेश में भी अच्छा काम कर रही है। अपने परचम तले इस संस्था ने अपने सदस्यों का बाल साहित्य और उनकी रचनाएँ विदेशी शिक्षण संस्थानों के पाठ्यक्रम में भी लगाई हैं। सोशल मीडिया के माध्यम से भी कविता को एक सकारात्मक दिशा देने का पहल कर रहे हैं।

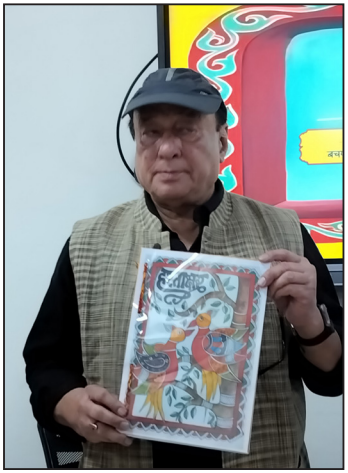
पटना काव्य गोष्ठी की अध्यक्षता कवयित्री पंकजवासिनी ने किया, जो इस संस्था की बिहार प्रमुख भी हैं। संस्था की सिटी प्रमुख निशि सिंह ने अपने आवास पर आयोजित इस संगोष्ठी के आरंभ में आगत कवियों का स्वागत किया। संगोष्ठी का संचालन करते हुए 'तर्पण' एवं 'राइज़िंग बिहार' के साहित्य सम्पादक सिद्धेश्वर ने कहा, "इस तरह की छोटी साहित्यिक गोष्ठियाँ, उर्वरा का काम करती हैं जिससे अच्छे साहित्य का सृजन होता है।"

साहित्य, संस्कृति एवं मानवता को समर्पित संस्था 'युगानुगूँज' की राज्य प्रमुख

पंकजवासिनी के अध्यक्षीय उद्घोषणा एवं धन्यवाद ज्ञापन के साथ कार्यक्रम की समाप्ति की घोषणा हुई।

रिपोर्ट : बीना गुप्ता, ई-मेल : beenasidhesh@gmail.com

- **साहित्य चेतना, समाज और अभिव्यक्ति के बदलाव का माध्यम**



साहित्य चेतना, समाज और अभिव्यक्ति के बदलाव का माध्यम है। हिन्दू कॉलेज के हिन्दी विभाग की हस्तलिखित पत्रिका 'हस्ताक्षर' के रजत जयंती अंक का लोकार्पण करते हुए प्रसिद्ध कवि और कहानीकार उदय प्रकाश ने कहा कि हमारे आख्यान भी हाथों से लिखे गए थे। साहित्य प्रकृति के सबसे निकटतम होता है। मुक्तिबोध के शब्दों को याद करते हुए उन्होंने कहा कि साहित्य गहन मानवीय सक्रियता है। रामविलास शर्मा भी हस्तलिखित पत्रिका निकालते थे जिसका नाम 'सचेतक' था। उन्होंने रामविलास शर्मा, उनकी इस पत्रिका और उनके द्वारा बनाए गए विद्यार्थी संगठन से जुड़े अनेक संस्मरण भी सुनाए।

लेखक ने बताया कि यह कहानी एक 19 वर्षीय युवक और युवती की प्रेम कथा है जो जीवन और समाज की तमाम टकराहटों से जूझते हैं। यह कहानी इतनी चर्चित रही कि 2010 में 'न्यूयॉर्क रिव्यू ऑफ़ बुक' ने इसे सबसे चर्चित साहित्यिक पुस्तकों की सूची में दूसरे स्थान पर रखा।

इससे पहले औपचारिक स्वागत करते हुए विभाग के वरिष्ठ शिक्षक रामेश्वर राय ने कहा कि हाथ से लिखना आदमी होने की बुनियादी प्रतिज्ञाओं, पहचानों और अभिलाषाओं में से एक है। उन्होंने आज के युग में हस्तलिखित पत्रिका निकालना अदम्य बताते हुए कहा कि यह आँधी में दिया जलाने जैसा है। 'हस्ताक्षर' पत्रिका भी उसी आँधी में जलता दिया ही है जो लगातार 25 वर्षों से हिन्दी रचना संसार को रौशन कर रहा है। श्री राय ने उदय प्रकाश की कहानी 'वॉरेन हास्टिंग का साँड' को इतिहास का रचनात्मक रूपांतरण बताया वहीं उनकी कविता 'तिब्बत' का ज़िक्र करते हुए कहा कि इस कविता में संस्कृति को कैसे बर्बरता से नष्ट किया गया है, उसका नाद सुनाई देता है।

हिन्दी विभाग की प्रभारी रचना सिंह के मार्गदर्शन में आयोजित लोकार्पण समारोह में कार्यक्रम में विभाग के प्राध्यापक अभय रंजन सहित विभाग के अन्य प्राध्यापक भी मौजूद रहे। कार्यक्रम में हिन्दी साहित्य सभा की कार्यकारणी, 'हस्ताक्षर' पत्रिका का सम्पूर्ण सम्पादक मंडल तथा बड़ी संख्या में अनेक विद्यार्थी और शोधार्थी मौजूद रहे।

रिपोर्ट : आकाश मिश्रा ई-मेल : hindisahityasabhahc@gmail.com

स्वच्छता पखवाड़ा



प्रकाशन विभाग की अपर महानिदेशक श्रीमती शुभा गुप्ता ने स्वच्छता पखवाड़े में आयोजित वाद-विवाद एवं पोस्टर समेत विभिन्न प्रतियोगिताओं का पुरस्कार वितरण किया

प्रकाशन विभाग द्वारा बाल भारती चित्रकला प्रतियोगिता



'चित्रकला प्रतियोगिता' के समापन पर श्रीमती शुभा गुप्ता, अपर महानिदेशक, प्रकाशन विभाग द्वारा बच्चों को पुरस्कार दिए गए। उन्होंने एयर फ़ोर्स बाल भारती स्कूल के प्रतिभागी बच्चों के प्रदर्शन को सराहा और उज्ज्वल भविष्य के लिए उन्हें शुभकामनाएँ दीं

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मंत्रालय
भारत सरकार

ई-रिसोर्स एग्रीगेटर (ईआरए)

के एम्पैनलमेंट के लिए आवेदन आमंत्रित

सरकार के प्रतिष्ठित प्रकाशन संस्थान से जुड़ने और उसके ई-प्रकाशनों के विक्रय का सुनहरा अवसर



प्रमुख लाभ :-

- प्रकाशन विभाग की लोकप्रिय ई-पुस्तकें और ई-पत्रिकाएं उपलब्ध कराने का अवसर।
- प्राप्त राजस्व में 30% की निश्चित हिस्सेदारी।
- किसी निवेश की आवश्यकता नहीं।
- मात्र 2000 रुपये का पंजीकरण शुल्क।

अधिक जानकारी के लिए देखें –
www.publicationsdivision.nic.in

संपर्क करें
फोन : 011 24365609
ईमेल : businesswng@gmail.com
पता : व्यापार स्कंध, कमरा संख्या–758, सूचना भवन, लोधी रोड, नई दिल्ली–110003

डाक तार पंजीयन सं. डीएल(एस)-05/3222/2024-26
Magazine Post No. DL(DS)-42/MP/2022-23-24
U(DN)-49/2021-23 Licenced to post without pre-payment at RMS Delhi
● 10 मई 2024 को प्रकाशित ● 21-22 मई 2024 को डाक द्वारा जारी

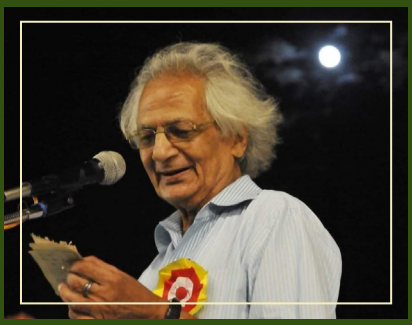
ISSN: 0971-8478
आरएनआई : 701/57



सुप्रसिद्ध कथाकार मालती जोशी

(4 जून, 1934 - 15 मई, 2024)

(अंतिम साक्षात्कार भीतर के पृष्ठों में)



नवगीतकार माहेश्वर तिवारी

(22 जुलाई, 1939 - 16 अप्रैल, 2024)

(श्रद्धांजलि आलेख भीतर के पृष्ठों में)

प्रकाशक व मुद्रक शुभा गुप्ता, अपर महानिदेशक, प्रकाशन विभाग द्वारा संदीप प्रेस, सी-105/2, इंडस्ट्रियल एरिया, फ़ेस-1, नारायणा, नई दिल्ली-110028 से मुद्रित एवं प्रकाशन विभाग, सूचना भवन, सीजीओ कॉम्पलेक्स, लोदी रोड, नई दिल्ली-110003 से प्रकाशित। सम्पादक : फरहत परवीन